आजकल

अक्टूबर 1986

मूल्य दो रुपये



"हिन्दी राष्ट्र के व्यक्तित्व की वाणी है"

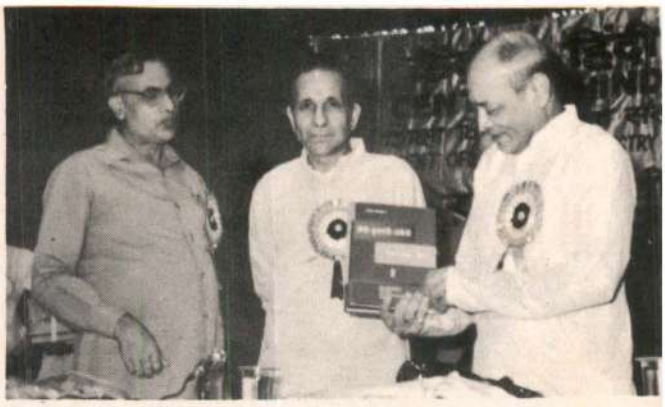
—सुधाकर पाण्डेय

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के रजत जयंती वर्ष के उपलक्ष्य में गत 22-23 अगस्त को यहां राजधानी में एक भव्य समारोह का आयोजन किया गया। इसमें देश के कोने-कोने से आए हिन्दी प्रेमी विद्वानों ने भाग लिया। इसमें 15 हिन्दीतर-भाषी हिंदी लेखकों को उनकी हिंदी में लिखी रचनाओं के लिए 2500-2500 रुपए के पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

समारोह का उद्घाटन मानव संसाधन विकास मंत्री श्री पी० वी० नरसिंह राव ने किया। अपने उद्घाटन भाषण में मंत्री महोदय ने कहा कि निदेशालय के 25 वर्ष पूरे हो चुके हैं और उसका यौवन काल आरंभ हो गया है। यह अब भारत और भारती की सेवा में अपनी पूरी शक्ति से संलग्न है। भाषा की दृष्टि से इस विशाल देश में एक सूत्रता आनी ही चाहिए इसलिए हमें हिंदी को आगे बढाना है।

समारोह की अध्यक्षता भूतपूर्व सांसद श्री सुधाकर पांडेय ने की। उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में हिंदी को "राष्ट्र के व्यक्तित्व की वाणी" कह कर संबोधित किया और कहा कि राष्ट्र को यदि कोई भाषा जोड़ सकती है तो वह हिंदी ही हो सकती है। भाषाविद् डा० कैलाशचंद्र भाटिया ने निदेशालय की पिछले 25 वर्षों की उपलब्धियों पर प्रकाश डाला। भूतपूर्व निदेशक डा० गोपाल शर्मा, डा० अशोक कालरा एवं श्री वेलायुधान नायर ने भी अपने-अपने निबंध पढ़े और कई महत्वपूर्ण सुझाव दिए।

अगले दिन 23 अगस्त को 'भारतीय वाङगमय की मूलभूत एकता' और 'हिन्दी के विकास की भावी संभावनाएं' विषय पर चर्चा हुई। पहली संगोष्ठी का प्रवर्तन करते हुए सिद्ध समालोचक और चिंतक डा० नगेन्द्र ने बताया कि राष्ट्र की एकता के लिए संस्कृति की एकता का होना अनिवार्य है और संस्कृति की एकता के लिए साहित्य की एकता अनिवार्य है।



इसी संदर्भ में उदयपुर विश्वविद्यालय के हिंदी विभागाध्यक्ष डा० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' ने निदेशालय के कार्यों की प्रशंसा करते हुए इस बात को रेखांकित किया कि उत्तर-दक्षिण की भाषाओं और उनके साहित्य का परिचय संबोधित व्यक्तियों की भाषा में ही दिया जाना अधिक श्रेयस्कर होगा। इस अवसर पर कलकत्ता से पधारे कवि श्री स्वदेशी भारती, पत्रकार श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, उज्जैन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष डा० राममूर्ति त्रिपाठी और भूतपूर्व शिक्षा सचिव त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी आदि विद्वानों ने केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के योगदान की प्रशंसा करते हुए हिन्दी के प्रचार-प्रसार तथा विकास हेतु कई सुझाव दिए।

समापन सत्र की अध्यक्षता अखिल भारतीय हिंदी संस्था संघ के अध्यक्ष और हिंदी विद्यापीठ देवघर के कुलाधिपति डा० गंगाशरण सिंह ने की। इसमें सांसद श्री रत्नाकर पांडेय ने भी अपनी ओजस्वी वाणी में प्रेरणाप्रद भाषण दिया।

समारोह के अंत में निदेशालय के निदेशक श्री राजमणि तिवारी ने विद्वान वक्ताओं, उपस्थित व्यक्तियों और हिंदी सेवियों को धन्यवाद दिया। इस संपूर्ण समारोह का संचालन केंद्रीय हिंदी निदेशालय के प्रधान संपादक डा० नरेन्द्र व्यास ने किया।

डा० सुमन कुमार
सी-2-249 जनकपुरी, नई दिल्ली-110058

भोपाल में 'सारस्वत सम्मान' एवं 'केडिया पुरस्कार'



'सारस्वत सम्मान 'एवं 'केडिया पुरस्कार' ने यह सिद्ध कर दिया है कि मध्यप्रदेश में हिन्दी सेवकों की कमी नहीं है, कमी है, तो उन्हें खोजने वाली आंखों की।'.....ये उद्गार व्यक्त किए मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री मोतीलाल वोरा ने गत 16 अगस्त को भोपाल के रवीन्द्रालय में आयोजित एक साहित्य पुरस्कार समारोह में। इस वर्ष का 'सारस्वत सम्मान' हिन्दी के वरिष्ठ साहित्यकार व वयोवृद्ध समालोचक आचार्य विनय मोहन शर्मा को प्रदान किया गया और 21 हजार का 'केडिया पुरस्कार' आज के चर्चित युवा समीक्षक डा. प्रभाकर क्षोत्रिय की पुस्तक 'रचना एक यातना है' को 1985 वर्ष की 'श्रेष्ठ कृति' मानकर दिया गया। इस सम्मान व दोनों पुरस्कारों का अयोजन स्थानीय साप्ताहिक 'जनधर्म' ने किया था। □

—आशारानी व्होरा
सी 6 बी/एम. आई. जी. फ्लैट्स,
मायापुरी. नई दिल्ली—64



आजकल

वर्ष : 42; अंक : 6, पूर्णांक : 506 अक्तूबर : 1986
(आश्विन-कार्तिक, 1908)

आधुनिक साहित्य
एवं
संस्कृति का संवाहक मासिक

संपादक
नरेन्द्र सिन्हा

सहायक संपादक
प्रवीण उपाध्याय

उप-संपादक
राधेश्याम भारद्वाज

सहायक व्यापार व्यवस्थापक : शकुन्तला

सहायक निदेशक (प्रकाशन) : आर. एस. मुंजाल

आवरण सज्जा : जीवन अडालजा

चित्रकार : देवकीनन्दन शर्मा

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार : सम्पादक 'आजकल' (हिन्दी)'
पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001, दूरभाष : 387069

2. **प्रतिक्रियाएं**

3. **सम्पादकीय** : ये समस्याएं

लेख

4. साम्प्रदायिक तनाव और गांधी जी का अभाव — रतनलाल जोशी
6. परिचर्चा : आज यदि गांधी जी होते
10. निबन्ध : पानी का स्वर — स. ही. वात्स्यायन
12. प्रेमचन्द ने गोदान की रचना कैसे की — डा. कमल किशोर गोयनका
21. गद्यकार दिनकर — डा. आनन्द नारायण शर्मा
23. लोक-गाथा : एक तात्विक विवेचन — डा. महेश चन्द्र
29. उपन्यासकार बलवन्त सिंह — तिलकराज गोस्वामी
31. गंगा निर्मलीकरण अभियान — राममोहन पाठक
37. स्वयं के प्रति तटस्थता कठिन साधना मांगती है — डा. विजय अग्रवाल

18. **कविताएं**

राजेन्द्र प्रसाद सिंह, हरभजन सिंह हुन्दल, मिश्रीलाल जायसवाल, योगेन्द्र दत्त शर्मा, नरेन्द्र मोहन, बलदेव बंशी, विनोद भृग, रघुनाथ प्रसाद 'विकल', मोहन चन्द्र मंटन, केदारनाथ कोमल

कहानियां

15. कटी पतंग — रिफत सरोश
26. सिन्दूर (मराठी कहानी) — रामनाथ चहवाण
33. सवारी — गंगेश गुंजन
22. लघुकथा : कुसूर — अतुलमोहन प्रसाद

इसके अतिरिक्त पुस्तक समीक्षा, वातायन, रंगमंच आदि नियमित स्तम्भ

प्रतिक्रियाएं

सुदीर्घ यातनामयी प्रतीक्षा के बाद जब 'आजकल' का जून अंक हाथ में आया तो लगा कि घोर निराशा की मध्य निशा में प्रभात प्रोदभूत हुआ है अथवा निवड़ श्रावणी तमिस्रामें विद्युल्लतिका विकसित हुई है अथवा यंत्रणामय विरह के बाद मधुरी प्रेयसी प्राप्त हुई है अथवा विछुड़ा हुआ जीवनसाथी अथवा खोया हुआ बच्चा मिल गया है। एक साथ इतनी सारी विमिश्र अनुभूतियों-भावों का रेलमपेल, उनका एक बार यौगिक उद्भाव प्रस्फुटन। ऐसा कि शब्द परिभाषित करने में असमर्थ। खैर, संपादकजी, जान में जान आई, आपने 'आजकल' को पुनः नियमित रूप से दीर्घजीवी करने की विधिवत घोषणा कर दी।...इस विशेषांक की सामग्री पर्याप्त ज्ञानवर्धक, वैविध्यपूर्ण रही-बहुपक्षी, बहुमुखी। उत्तर प्रदेश से सम्बन्धित बहुत सारी प्रामाणिक सामग्री प्राप्त हुई। उत्तर प्रदेश तो सचमुच भारत का हृदयस्थल है, रामचरितमानस के अयोध्याकांड की तरह बल्कि मैं तो यहां तक कहूंगा कि उत्तर प्रदेश ही वास्तविक भारत है। अतः उत्तर प्रदेश का महात्म्य असंदिग्ध है, निर्विवाद है।

शम्भुनाथ सिंह, रामदरश मिश्र, ठाकुर प्रसाद सिंह, गोपाल प्रसाद व्यास, राममोहन पाठक की कविताएं काफी पुष्ट और प्रभावशालिनी रहीं—मर्म को छूती हुईं-किसी-न-किसी दर्द, पीड़ा, व्यथा-वेदना, त्रासदी को उजागर करती हुई, नई धार देती हुई।

शिवानी की 'माई तेरी संकरी दुअरिया' गीतों की-सी भावात्मकता, लयात्मकता, सरसता-मधुरता लिये रही जो दिल की गहराई में रच-बस गई। और विवेकी राय का ललित निबंध 'खटिया' तो इस विशेषांक की विशेष उपलब्धि माना जाना चाहिए। सृजनात्मक ऊर्जा और कलात्मक सौष्टव से ओतप्रोत यह निबंध बड़ा ही मनोहारी और रसात्मक बन पड़ा है। 'खटिया' जैसी नगण्य वस्तु को 'केन्द्र विन्दु' बना कर रायजी ने बड़े सहज भाव से, बड़े कलात्मक कौशल से एक बृहद् ताना-बाना, एक विशाल मकड़ जाल बुना है जो पाठकों को शुरू से अन्त तक रसलीन कर आनन्द-आस्वादन कराता रहा है। बधाई।

—रवीन्द्रनाथ ओझा, बेतिया (बिहार)

उत्तर प्रदेश की विकासशील बहु-आयामी साहित्यिक—सांस्कृतिक सोनाली परम्पराओं का मनोरम मधुपर्व, जून अंक अरसा बाद नसीब हुआ। अपने धारदार आलेखों, आत्मिक ऊर्जा, अनुभव और वैचारिक अग्निमा से चुक से सुभाषित सम्पादकीय, रेशमी-रेशमी मुख-पृष्ठ, सब के सब बेजोड़ और संग्रहणीय। एक साथ इतनी पोख़्तगी का मजमूआ (संग्रह) आप जैसे मनीषी ही एक जुट अपने सत्प्रयास से दे सकते हैं। बंधुवर जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी का लेख 'पत्रकारिता का गढ़ उत्तर प्रदेश,' विश्वमित्र उपाध्याय का 'उत्तर प्रदेश के क्रान्तिकारी', अमर कान्त की कहानी 'भारत छोड़ो', डा० कमल किशोर गोयनका 'उत्तर प्रदेश की कुछ हिन्दी पत्रिकाएं', वल्लभ डोभाल की कहानी 'संबंध', डा० राष्ट्रबन्धु का 'उत्तर प्रदेश का बाल-साहित्य'—आज के आईने में कल का दस्तावेज़ हैं। हां, एक शिकायती प्रणाम 'हिन्दी-साहित्य और उत्तर प्रदेश' तथा 'उत्तर प्रदेश का उर्दू-साहित्य' के लेखकों से ज़रूर है। हिन्दी-साहित्य तथा उर्दू-साहित्य में आज़मगढ़ जनपद के साहित्यकारों का अक्षर अवदान है जिसको हिन्दी-साहित्य तथा उर्दू-साहित्य के इतिहास वेत्ताओं ने अपने-अपने तरीके से रेखांकित भी किया है किन्तु आधा-अधूरा विवरण प्रस्तुत करके आज़मगढ़ के समग्र साहित्यिक अवदान को नकारने का लेखक द्वय ने प्रयास किया है। हरजू मिश्र, बाबा सुमेर सिंह 'साहबजादे', कवि-सम्राट अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', पद्म नारायण आचार्य, श्री 'हरि', जदुवीर सिंह, श्यामापति पाण्डेय, महाकवि गुरुभक्त सिंह 'भक्त', महाकवि विश्वनाथ लाल 'शैदा', रामचरित उपाध्याय, आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय, शान्तिप्रिय द्विवेदी, डा० श्रीराम वर्मा, 'सूंड' फैज़ाबादी, डा० कन्हैया सिंह, डा० त्रिभुवन सिंह, डा० रतिभानु सिंह 'नाहर', अल्लामा कैफ़ी चिरैयाकोटी, अल्लामा फ़ारूक चिरैया कोटी, खलीलुलईमान आज़मी, इकबाल सुहैल आदि के अवदान को नज़रअंदाज करना लेखकीय ईमानदारी पर प्रश्न-चिन्ह लगाने जैसा है। डा० शम्भुनाथ सिंह की रचना कविता के नाम पर निरी अनुगूंज है।

—मधुरनज़्मी, आज़मगढ़।

'आजकल' का जून 86 अंक काफी विलम्ब से मिला। किन्तु अंक देखने के बाद सारी शिकायतें जाती रहीं। सम्पादकीय के अन्तर्गत आपने जो चर्चा की है वह आज के परिप्रेक्ष्य में बिल्कुल प्रासंगिक है लेकिन वह क्या है जो इन आदर्शों के बावजूद बात वहीं की वहीं रह जाती है...खैर, राष्ट्रीय आंदोलन और उत्तर प्रदेश-एक दृष्टि निक्षेप, पत्रकारिता का गढ़ उत्तर-प्रदेश, हिन्दी साहित्य और उत्तर प्रदेश, उत्तर प्रदेश का उर्दू साहित्य, उत्तर प्रदेश की लोक कलायें, उत्तर प्रदेश की चित्रकला शैलियां आदि आलेख काफी उच्च-स्तरीय व ज्ञानवर्धक हैं जो उत्तर-प्रदेश' का सही-सही मूल्यांकन करते हैं। डा० कमल किशोर गोयनका का चर्चित लेख 'उत्तर प्रदेश की कुछ हिन्दी पत्रिकाएं' वर्तमान पत्रकारिता का एक सहानुभूतिपूर्ण सर्वेक्षण है। डा० साहब को बधाई।

— रामजी शर्मा, मुंगेर

'आजकल' का जून अंक देखकर मन खुशी से झूम उठा। आशंका थी, कहीं पत्रिका का प्रकाशन बंद तो नहीं हो गया। अंक अपने-आप में ढेर सारी सामग्री समेटकर जब हमारे समक्ष आया तो मैं फूला नहीं समा पाया। मुखपृष्ठ का दृश्य सुंदर है, उसके नीचे यह भी लिखते कि दृश्य किस स्थान का है तो अच्छा होता।

—मधु चौधरी, पान्दुरना (छिंदवाड़ा)

'आजकल' का जून अंक अत्यन्त परिमार्जित व सर्वोत्कृष्ट रहा। ऐसा अंक पढ़ने के बाद बहुत कम बातें ही उस प्रदेश के बारे में जानने को रह जाती हैं। ऐसी ही जानकारी अन्य प्रदेशों पर भी देने की कृपा करेंगे।

—चन्द्रकान्त यादव, वाराणसी

उत्तर प्रदेश अंक की लगभग सम्पूर्ण सामग्री महत्वपूर्ण एवं संग्रहणीय है। 'राष्ट्रीय आन्दोलन और उ० प्र०' (इन्द्र प्रताप तिवारी) 'पत्रकारिता का गढ़ उ० प्र०' (जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी); हिन्दी साहित्य और उ० प्र० (अजय ब्रह्मात्मज); 'उत्तर प्रदेश का उर्दू साहित्य' (मेंहदी अब्बास हुसैनी); सुमित्रानन्दन पन्त के संस्मरण (डा० परमानन्द चौबे); उ० प्र० का बाल साहित्य' (डा० राष्ट्र बन्धु); उ० प्र० की चित्रकला शैलियां (घनश्याम रंजन) आदि लेख अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

कहानियों में जहां बल्लभ डोभाल की मार्मिक कहानी 'संबंध' एक अच्छी कहानी बन पड़ी है, वहीं कविताओं में शम्भुनाथ सिंह, रामदरश मिश्र एवं ठाकुर प्रसाद सिंह की रचनाओं ने प्रभावित किया।

—कमलेश भट्ट 'कमल', लखनऊ

ये समस्याएं

कई बार कोई समस्या ज्वलंत बन जाती है, और उसका समाधान हमें ढूंढे नहीं मिलता। साम्प्रदायिकता की समस्या भी एक ऐसी ही भीषण समस्या है जो स्वातंत्र्य-पूर्व काल से ही हमारे साथ रही है, और जिसने आज एक बार फिर उग्र रूप धारण कर हमारी राष्ट्रीय एकता और अखंडता के सामने प्रश्न चिन्ह लगा दिया है।

पंजाब की समस्या मूलतः एक राजनीतिक समस्या है जिसका एक संतोषजनक समाधान पंजाब समझौते के रूप में ढूंढ भी लिया गया है, लेकिन इस क्रम में साम्प्रदायिक विद्वेष का जो विष उमड़ा है वह पूरे राष्ट्र के लिए चिंता का विषय बना हुआ है-इससे हिंदुओं और सिखों के बीच की पारम्परिक एकता और सद्भाव खतरे में पड़ गया है—अन्यत्र भी छोटी-छोटी बात को लेकर साम्प्रदायिक वैमनस्य रह-रह कर फूट पड़ता है-कभी दिल्ली में, कभी उत्तर प्रदेश में, कभी गुजरात में। यदि इसका समाधान हमने समय रहते नहीं ढूंढा तो विद्वेष का यह सैलाब हमें बहा कर कहां ले जाएगा; यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

यदि ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में विचार करें तो पता चलेगा यह समस्या हमें अपने स्वातंत्र्य-पूर्व ब्रिटिश शासकों से विरासत के रूप में मिली है, जिनकी आरम्भ से ही इस देश के विभिन्न समुदायों को आपस में टकरा कर हमारी एकता को विखंडित करने की नीति रही थी। उनकी इसी नीति के कारण देश खंडित हुआ और इसके दुष्परिणाम हमें आज़ादी के 39 वर्ष बाद भी भुगतने पड़ रहे हैं। हमारे स्वातंत्र्य-संग्राम के पथ-प्रदर्शक यह भली भांति जानते थे, यही कारण था कि जब कभी यह लावा फूटता था, वे इस पर काबू पाने के लिए प्राण-पण से जुट जाते थे। वे जानते थे कि यदि अंग्रेजों की यह नीति सफल रही तो न तो विभिन्न सम्प्रदायों और संस्कृतियों के संगम इस देश की पारम्परिक एकता की रक्षा की जा सकेगी, न ही स्वतंत्रता का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकेगा। कई बार ऐसे अवसर आए जब दंगे शुरू होने पर गांधी जी ने अनशन प्रारम्भ कर देश को सचेत किया। सन् 1947 में जब देश खंडित स्वतंत्रता प्राप्त होने की खुशियां मना रहा था, वे नोआखली के दंगा-पीड़ितों के घर-घर घूम कर उनके आंसू पोछ रहे थे। कानपुर के दंगे को शांत करने के क्रम में गणेश शंकर विद्यार्थी शहीद बन गए।

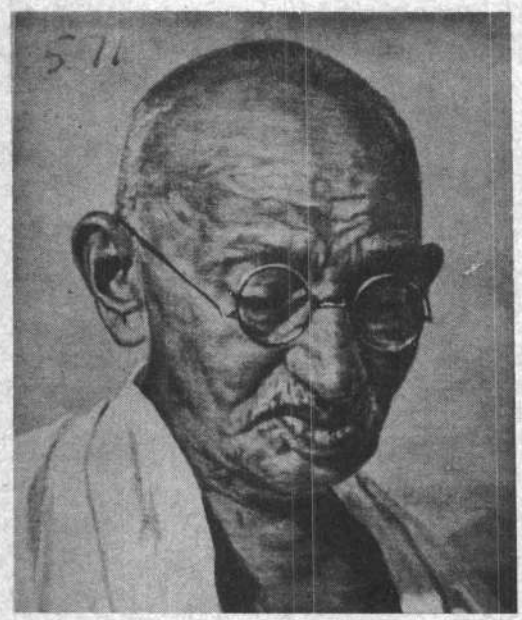
तब हमारी स्वतंत्रता के दुश्मन अंग्रेज थे, आज है एक पड़ोसी देश और विश्व की कुछ ऐसी शक्तियां जिन्हें हमारी स्वतंत्रता नहीं सुहाती। इन शक्तियों की हरचंद कोशिश रहती है कि भारत एक बार पुनः खंडित हो जाए जिससे उन्हें इस क्षेत्र में अपने प्रभाव-क्षेत्र का विस्तार करने का अवसर मिले।

वास्तव में इसका एक ही निदान है—देश के जन-जन में राष्ट्रीयता का भाव जागृत हो जिससे उनमें राष्ट्रीय हितों को क्षेत्रीय और जातीय हितों के उपर रखने का भाव जगे। लेकिन यह संभव कैसे हो? क्या किया जाए कि लोग हिंदू, सिख, मुसलमान नहीं, बल्कि भारतीय होने में गर्व का अनुभव करें, उनमें राष्ट्रीय निर्माण में सहभागी होने का भाव जागृत हो? यह इतना बड़ा काम है कि इसे कुछ महीनों या कुछ वर्षों में पूरा नहीं किया जा सकता। सरकार इस दिशा में पूरी तरह सचेष्ट है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रख कर नई शिक्षा नीति में युवकों को स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास से परिचित कराने और पाठ्यक्रमों में अपेक्षित सुधार लाने पर विशेष बल दिया गया है। लेकिन सरकारी प्रयत्न ही पर्याप्त नहीं होंगे। हमें स्वयं जागरूक रह कर साम्प्रदायिक व्यक्तियों और संस्थाओं पर कड़ी नज़र रखनी होगी। अनेक संस्थाएं विदेशों से धन प्राप्त कर धार्मिक स्वतंत्रता के नाम पर साम्प्रदायिकता की भावना उभार रही हैं। इस प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने की जरूरत है। एक धर्मनिरपेक्ष सामाजिक दृष्टि के विकास के लिए जो कुछ भी संभव हो किया जाना चाहिए। लेकिन, सबसे अधिक आवश्यक है उन राजनीतिक तत्वों को अपना दायित्व समझाने की जो अपने न्यस्त स्वार्थों की पूर्ति और नेतागिरी बरकरार रखने के लिए साम्प्रदायिकता के शोले भड़काने से बाज़ नहीं आते। ये ही गुंडा तत्वों को भी बढ़ावा देते हैं।

क्षेत्रीयता भी संकीर्ण मनोवृत्ति की परिचायक है जो उभार पर है। यदि ऐसा नहीं होता तो तमिलनाडु के एक मंत्री से हमें यह सुनने को नहीं मिलता कि हम तमिल पहले हैं, भारतीय बाद में। यह जोड़ने नहीं, तोड़ने वाली प्रवृत्ति है जिससे हमें सावधान रहना है। दुर्भाग्य से आज़ादी के बाद देश का जो बहुमुखी विकास हुआ है, उसमें क्षेत्रीय संतुलन स्थापित नहीं किया जा सका है। इसके लिए आर्थिक रूप से पिछड़े राज्यों पर विशेष ध्यान देना जरूरी है। सरकार इस दिशा में भी प्रयत्नशील है। इसका प्रमाण हैं पंजाब और असम के समझौते। लेकिन इस क्रम में यदि विघटनकारी प्रवृत्तियां फैलें तो उनसे किसी प्रकार का समझौता नहीं किया जा सकता।

राष्ट्रीयता का भाव जागृत करने में देश के बुद्धिजीवियों-विशेषतः प्रचार माध्यमों और साहित्यकारों की भूमिका का भी बड़ा महत्व है। विचारों में क्रांति लाने, विवेक को जागृत करने का काम बुद्धिजीवियों का ही है। संतोष की बात है कि बुद्धिजीवी वर्ग इस दिशा में सजग है। बुद्धिजीवी वर्ग ने विघटनशील प्रवृत्तियों की खुलकर निन्दा की है, और आज भी कर रहा है; पत्र-पत्रिकाओं ने भी विवेकशीलता का परिचय दिया है और साहित्य भी अब मध्य वर्ग के मन के अंधेरे से निकल कर आम आदमी की आशा-आकांक्षाओं से जुड़ रहा है। साहित्यकारों, प्रचार-माध्यमों और अन्य बुद्धिजीवियों को साम्प्रदायिक-राजनीतिक कुचक्रों का पर्दाफ़ाश कर राष्ट्र की सांस्कृतिक एकता को सुदृढ़ आधार प्रदान करना चाहिए। इसमें किसी तरह की ढील नहीं बरती जा सकती। □

साम्प्रदायिक तनाव और गांधी जी का अभाव



अहिंसा गांधीजी का जीवनदर्शन था और सत्य का साक्षात्कार उसकी सार्थकता। अहिंसा के द्वारा ही वे सत्य के साथ एकरूप हो जाना चाहते थे। सत्य को ही वे परमेश्वर मानते थे। उनका परमेश्वर भी वैष्णव संतों के ईश्वर की भांति मनुष्यत्व के चरम विकास का ही प्रतीक था। मनुष्यमात्र के साथ क्रियात्मक स्नेह-सौहार्द्र, मैत्री-मांगल्य भाव उनके ईश्वर की दैनिक उपासना थी। गांधीजी की अहिंसा का सरल शब्दों में निरूपण करते हुए उनके विश्वासभाजन भाष्यकार किशोरभाई मश्रुवाला लिखते हैं कि विचार के स्तर पर सब के साथ सद्भाव एवं कर्म के स्तर पर सब की सेवा ही गांधीजी की अहिंसा है।

साम्प्रदायिक सद्भाव भी मानव-मैत्री की अन्य प्रवृत्तियों की तरह गांधीजी की अहिंसा का जीवंत अंग रहा। वे स्पष्ट कहते थे कि साम्प्रदायिक विद्वेष यदि शांत नहीं होता है, तो यह मेरी अहिंसा की विफलता ही नहीं, मेरे जीवन की निरर्थकता भी है। जन-नेतृत्व के क्षेत्र में उनके इस वैयक्तिक जीवनदर्शन के सम्मुख परीक्षण की अगणित कसौटियां आयीं, प्राणों की बाजियां भी लगीं, किंतु गांधी को अपनी अहिंसा से और अहिंसा को अपने गांधी से कभी कोई विच्छिन्न नहीं कर सका।

हिंसा किसी भी रूप में हो, गांधीजी उसे व्यक्ति, समाज अथवा राज्य के पतन का प्रमाण मानते थे। मनुष्य उनकी विचारधारा में सर्वोच्च महत्व का प्रतीक था। हिंसा के अवलम्बन द्वारा वे उसका अधःपतन देख नहीं सकते थे। हिंसा उनके शब्दों में कायरता का और अहिंसा शौर्य का ही दूसरा नाम है।

साम्प्रदायिक एकता के प्रसंग में गांधीजी ने अहिंसा को ही अपना मुख्य अस्त्र बनाया था, और इतिहास साक्षी है कि परीक्षा की विकट घड़ियों में जहां सरकारों ने हिंसा के सामने घुटने टेंक दिये, वहां उनकी अहिंसा ने अपने विजयध्वज गर्व से फहराये। 1947 में नौआखली में हुआ चमत्कार ज्यादा पुराना नहीं है। हमें भी कुछ अर्से तक गांधीजी की इस ऐतिहासिक यात्रा में अहिंसा के आध्यात्मिक शौर्य के दर्शन का सौभाग्य मिला था। उत्तेजित घृणा, क्रूरता एवं हिंसा के दावानल का गांधीजी ने कदम-कदम पर आचमन कर दुनिया के सामने यह प्रत्यक्ष कर दिया था कि ऐसी कोई हिंसा नहीं है जिसको अहिंसा प्रेम में परिवर्तित नहीं कर देती हो। पथभ्रष्ट साम्प्रदायिक वैमनस्य में अंगारे बरसाती आंखों वाले लोगों के आंगनों, झौपड़ों में गांधीजी ऐसे सरल-सहज प्रेमभाव से जाकर बैठ जाते, मानो सदियों से उनके स्वजन-आत्मीय रहे हों। लोग उन्हें देखते, हक्का-बक्का हो जाते, भावावेश की बाढ़ उमड़ पड़ती, मन की सारी सड़ांध घुल जाती और गली-गली में आवाज़ें बुलंद हो उठतीं—'बड़े इमाम, बहुत बड़े इमाम आये हैं, जन्नत का कोई फरिश्ता हमारे यहां

— रतनलाल जोशी

उतरा है'—और इस तरह बात-की-बात में सारा गांव गांधीमय हो जाता। ज़हरभरी घृणा का आग उगलता ज्वालामुखी शीतल जल में पिघल कर प्रेम-मैत्री की गंगोत्री में फूट निकलता—'रघुपति राघव राजा राम, पतित पावन सीता राम'! प्रार्थना का नाद अंतरिक्ष में गूंजता रहता—

ईश्वर अल्लाह तेरे नाम
सबको सन्मति दे भगवान!

आज हिंसा की लपटों से देश का तन-मन झुलस रहा है। धर्म के नाम पर पथभ्रष्ट मनुष्य रक्तपात पर उतर आया है। साम्प्रदायिक विद्वेष हिंसा के दावानल में परिणत होकर हमारा सर्वस्व भस्मसात् करने पर तुल पड़ा है। दुर्दैव की इन घड़ियों में स्वभावतः गांधीजी का स्मरण हो आता है। कई किस्म के प्रश्न उठते हैं—आस्था-विश्वास के और अनास्था-अविश्वास के भी। साम्प्रदायिक विद्वेष के शमन की जो सफलताएं गांधीजी के माध्यम से पूर्वकाल में मिली थीं, उनके जो साक्षी आज जीवित हैं, वे तो निस्संदेह कहेंगे कि यदि आज गांधीजी होते तो साम्प्रदायिक सद्भाव हिंसा के इस अग्निकुंड का रूप धारण नहीं करता। विद्वेष के सुलगते ही गांधीजी के प्रेम की फुहारें उसे बुझा देतीं, अथवा स्वाधीन भारत में गांधीजी राष्ट्र-निर्माणार्थ ऐसी आध्यात्मिक क्रांति का सृजन करते जिसकी प्रेरणा से साम्प्रदायिक अलगाव ही खत्म हो गया होता—मनोबुद्धि से शुद्ध-प्रबुद्ध भारत ऐसे नागरिकों का देश बन गया होता जो पारस्परिक सद्भाव को ही आत्मोन्नति का मूल मानते हों।

गांधीजी का कर्मदर्शन राष्ट्रहित की प्रवृत्तियों के लिए कभी भी शासन का मुखापेक्षी नहीं रहा। वे जनता की शत-प्रति-शत आत्मनिर्भरता के हिमायती थे। उनके अनुसार लोकराज में सबसे

प्रथम प्राथमिकता लोक-कर्तत्व की है। लोक को जागृत कर उसे अपने स्वयं का भाग्यविधाता बनाने के लिए वे आजीवन प्रयत्नशील रहे। कितनी-कितनी प्रवृत्तियों की कितनी-कितनी छोटी-मोटी संस्थाएं उन्होंने निर्मित कर अंग्रेजी राज को लोकनिष्ठा से कोसों दूर हटा दिया था। शासन-क्षेत्र में पराधीन होते हुए भी लोकक्षेत्र में देश स्वाधीनता की दिशा में तेजी से आगे बढ़ता जा रहा था। ये जनहित-निर्मात्री संस्थाएं पारस्परिक सहयोग-सहकार को प्रोत्साहित कर रचनात्मक वातावरण पैदा करती थीं। रचनात्मकता के दृष्टिकोण में वैर-वैमनस्य की गुंजाइश नहीं रहती। वैयक्तिक हित परस्पर गुंथते चलते हैं और हितों के साथ मन-मस्तिष्क भी सौहार्द्र एवं भाईचारे के धागे में बंधते जाते हैं। गांधीजी के जाने के बाद रचनात्मक प्रवृत्तियों के निर्माण-प्रसार का यह क्रम समाप्त हो गया है। माला टूट गयी तो मनके भी बिखर गये हैं—लोगों के हित अब परस्पर जुड़ने के बजाय टकराते हैं, संघर्ष की इस आंच में जाति, सम्प्रदाय, धर्म और राजनीति के न्यस्त स्वार्थ ईंधन डालकर उसे हिंसा की लपटों में प्रज्वलित कर देते हैं। गांधीजी के होते ये सब कभी नहीं होता!

एक लम्बे अर्से तक मानवहित, व्यापक जन-मन-मंगल में अपने को मन, कर्म, वचन से समर्पित कर गांधीजी ने अपने व्यक्तित्व में जो तेजस्विता प्राप्त कर ली थी, लोकहृदय पर उसका प्रभाव अपरिमित था। साधारण जनता की तो बात अलग, रोम्यां रोलां, आइंस्टीन, रवींद्रनाथ ठाकुर जैसी युग-विभूतियां भी उनके आध्यात्मिक चैतन्य से कम प्रभावित नहीं थीं। और ऐसे बीसियों महापुरुष उनके अवतरण से अपने देशकाल को धन्य मानते थे। जहां भी वे जाते उनका पारदर्शी मानव-ममत्व उन्हें सब का परम आत्मीय स्वजन बना लेता। क्रोध में पागल विरोधियों के बीच से गुजरते हमने उन्हें देखा है। यहीं दिल्ली के लालकिले की घटना है। विस्थापितों के झुंड उन्हें मारने के लिए दौड़ पड़े थे, किंतु जब उन्होंने उन्हें देखा, उनकी वाणी सुनी, तो सब पश्चाताप में सुबक-सुबक कर रो पड़े, चरण-रज सिर पर चढ़ाने की होड़ लग गयी।

साम्प्रदायिक दंगों के समय गांधीजी की आत्मा का यह उन्मेष ही चमत्कारिक उपलब्धियां अर्जित करता था। उन्हें देखते ही, सुनते ही लोगों के दिल बदल जाते थे। बम्बई का एक भीषण साम्प्रदायिक दंगा गांधीजी के संकल्पमात्र से शांत हो गया था। उसका आंखों देखा विवरण यों है—

सन् 1945 के फरवरी मास में बम्बई में मुस्लिम लीग के विषैले प्रचार के फलस्वरूप साम्प्रदायिक तनाव इतना बढ़ा कि जगह-जगह हिंदू-मुस्लिम दंगों के रूप में फूट निकला। अंग्रेज सरकार का प्रशासन आंखों पर पट्टी बांधे, कानों में भीम डाले सारा अनर्थ दरगुजर करता रहा। लीग के अधिवेशन में हो रहे जेहाद-गृहयुद्ध एवं 'लड़ कर लेंगे पाकिस्तान' के हिंसा-प्रेरक नारों से शहर में आतंक तीव्र होता जा रहा था। मेयर की अध्यक्षता में नगर के प्रतिष्ठित लोगों का एक प्रतिनिधिमंडल गवर्नर से मिलने गया। गवर्नर ने जैसे इस खून-खच्चर से उसका कोई सरोकार नहीं हो, टके-सा उत्तर दे दिया—"लीग राजनीतिक दल है, इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकते। दंगे उत्तेजना के कारण होते हैं, उत्तेजना थोड़े अर्से तक रहती है। वैसे, पुलिस को और मुस्तैद कर दिया जायेगा।"

गवर्नर की इस भेंट से लोग बड़े निराश हुए। उधर दंगों ने और भी व्यापक रूप धारण कर लिया। इसी बीच गांधीजी बम्बई आये, पूना जाने के लिए वे कुछ घंटों के लिए बम्बई में रुके थे। दंगों की खबर मिलते ही उन्होंने पूना जाना स्थगित कर दिया और दंगाग्रस्त क्षेत्रों में जाने की तैयारी करने लगे। बिजली की तरह यह खबर शहर में कौंध गयी। उनके साथ जाने के लिए स्त्री-पुरुषों की भीड़ तेजी से एकत्र होने लगी। सरकार के कान खड़े हो गये। भागकर चीफ़ सेक्रेटरी गांधीजी से मिलने आये। छूटते ही गांधीजी ने कहा—"तुम्हारी सरकार अब इस देश पर राज नहीं कर सकती। जो सरकार निर्दोष प्रजा का संहार नहीं रोक सकती, उसे अभय नहीं दे सकती, वह क्या राज करेगी? आज यह जाहिर हो गया है। मैं दंगेवाले मोहल्लों में घर-घर जाकर हिंदुओं और मुसलमानों को उनकी गफ़लत का भान कराऊंगा। मुझे विश्वास है कि मेरी बात उनके गले उतर जायेगी।"

चीफ़ सेक्रेटरी का चेहरा तमतमा गया, अपने अपमान को वह मुश्किल से जब्त कर सका। चुनौती-मिश्रित कूटनीति के स्वर में बोला—"किंतु लोग इतने उत्तेजित हैं कि आपकी बात शायद ही सुनें, फिर आपकी सुरक्षा का प्रश्न भी तो है..." गांधीजी बीच में ही बोल उठे—"मेरी सुरक्षा तो भगवान के हाथ है। मुझे किसी की मदद नहीं चाहिए। मुझे अपनी बात सुनाना आता है। अगर लोग मेरी बात नहीं सुनेंगे तो मेरे जीने का कोई अर्थ नहीं है। फिर तो मेरा मर जाना ही अच्छा है। मेरे मरने पर शायद उनकी आंखें खुल जायें।"

दंगों को दबाने का भरसक प्रयत्न करने का वचन देकर चीफ़ सेक्रेटरी तो चला गया किंतु सुप्रसिद्ध भारतभक्त पत्रकार बी० जी० हार्नीमैन ने अपने सांध्य-समाचारपत्र 'सेंटिनल' का दोपहर-अंक निकाल कर उक्त संवाद को इस टिप्पणी के साथ प्रकाशित कर दिया कि गांधीजी के पीड़ित अंतःकरण से उपवास के संकल्प की ध्वनि निकलती है।

उपवास की आशंका से बम्बई नगरी कांप उठी लीग को अपना जलसा उसी दिन ख़त्म करना पड़ा। जत्थे के जत्थे स्त्री-पुरुष घरों से निकल पड़े और दंगाग्रस्त क्षेत्रों की तरफ बढ़ गये। रात भर पारस्परिक सद्भाव की सभाएं होती रहीं। गांधीजी को कहीं जाने की ज़रूरत नहीं पड़ी। दूसरे दिन दंगा शांत हो गया। पूने के लिए प्रस्थान करते समय जब श्री हार्नीमैन के साथ हम लोग गांधीजी के दर्शनार्थ गये, तो गांधीजी ने हार्नीमैन से कहा—"ईश्वर ने मेरी पुकार सुन ली। अब चौकीदारी करना तुम्हारा काम है।"

गांधीजी का ईश्वर सर्वशक्तिसम्पन्न ईश्वर था, करुणा का समुद्र, दरिद्रनारायण परमेश्वर था। अपने इस ईश्वर में उनका विश्वास इतना अटल था कि उसके अनुरूप वे स्वयं शक्ति के अथाह स्रोत एवं दीन-दुःखियों की श्रद्धा के भगवान बन गये थे। कथनी और करनी में फर्क नहीं होने देने के फलस्वरूप वे लोगों की श्रद्धा एवं विश्वास में इतनी गहराई से पैठ गये थे कि लोग अपने को उन्हें सौंपकर निश्चिंत हो जाते थे। डा० राजेंद्रप्रसाद इसके उदाहरण थे। वे अपनी आत्मकथा में लिखते हैं कि "मेरी यह धारणा अविचल है और मेरी तरह कई मेरे साथियों की भी कि अंत में सही वही होता है जो गांधीजी सोचते हैं।"

"साम्प्रदायिक सद्भाव के संवर्धन में अहिंसा से अधिक फलप्रद और कोई संजीवनी नहीं हो सकती। किंतु वह कायरों की

(शेष पृष्ठ 9 पर)

आज यदि गांधीजी होते

गांधी जयंती के अवसर पर कतिपय समकालीन राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को ध्यान में रखते हुए 'आजकल' की ओर से एक प्रश्नावली देश के पांच प्रमुख गांधीवादी चिन्तकों को भेजी गई थी। प्रश्नावली में उनसे पूछा गया था कि यदि आज गांधीजी जीवित होते तो इन समस्याओं के समाधान के लिए क्या करते? प्रश्नावली सर्वश्री जैनेन्द्र कुमार, विश्वम्भरनाथ पांडे, वियोगी हरि, गुलाब दास ब्रोकर और विष्णु प्रभाकर को भेजी गई थी। इनमें से प्रेस कापी तैयार होने तक श्री ब्रोकर के ही उत्तर हमें प्राप्त हुए हैं। श्री विष्णु प्रभाकर ने समयाभाव के कारण अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए हमें एक पत्र भेजा था। प्रश्नावली के साथ श्री ब्रोकर के उत्तर तथा श्री विष्णु प्रभाकर के पत्र का एक महत्वपूर्ण अंश प्रकाशित किया जा रहा है।

— सम्पादक

गांधी जी की संघर्ष-पद्धति की प्रासंगिकता कम नहीं हुई है

— गुलाब दास ब्रोकर

मैं आपकी बात से सहमत हूं कि गांधी जी की मृत्यु के बाद के इन 37 वर्षों में देश ने जीवन के आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक आदि सभी क्षेत्रों में जो बहुविध प्रगति की है वह अधिकांश उस रास्ते पर चलकर हुई है जिसे गांधी जी कदापि नहीं अपनाते। गांधी जी के जीवन-काल में लोकमान्य तिलक, एम. एन. राय, सुभाष चन्द्र बोस आदि अनेक नेताओं का गांधी जी के सत्य और अहिंसा के जीवन-दर्शन अथवा उनकी सत्याग्रह की संघर्ष-पद्धति में विश्वास न था।

फिर भी यह सत्य है कि गांधीजी ने सत्य और अहिंसा को अपने आन्दोलनों के केन्द्र में रखकर सत्याग्रह की संघर्ष पद्धति द्वारा देश को वह शक्ति प्रदान की जिससे उनके जीवन काल में ही देश आज़ाद हो गया। आज के हालात में यह प्रश्न विचारणीय है कि उनके बाद के इन 37 वर्षों में ऐसा क्या हो गया कि देश ने सभी क्षेत्रों में जो प्रगति की है उसमें गांधी जी द्वारा अपनाये गये रास्ते का आश्रय कम ही लिया गया?

उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर भी कमोवेश आप के प्रश्न में ही दिया गया है जहां कहा गया है कि—"समय बदलता है, समस्याएं बदलती हैं, लक्ष्य बदलते हैं, जीवन दृष्टि बदलती है"—इन्हीं कारणों से गांधी जी जिस रास्ते पर चले और जो मार्ग उन्होंने बताया उसे बाद में राष्ट्र ने नहीं अपनाया, फिर भी उनके सिद्धान्त प्रासंगिक लगते हैं।

प्रकृति और जीवन में होने वाले परिवर्तन का यह नियम है कि जो वस्तु-विशेष समय और परिस्थिति-विशेष में काम आती है वही समय और परिस्थिति बदलने पर कारगर सिद्ध नहीं होती। इस संदर्भ में मुझे स्टालिन की एक बात याद आ रही है। रूस में क्रांति के समय ट्रौटस्की क्रांति का जितना महान नेता था उतना ही महान विचारक भी था। उसका कहना था कि पूरे विश्व में क्रांति नहीं हुई तो एक राष्ट्र में हुई साम्यवादी क्रांति टिक नहीं सकती, सफल नहीं हो सकती। स्टालिन से इस विषय में पूछे जाने पर उन्होंने कहा कि तात्विक दृष्टि से उनकी बात सही है किन्तु इस समय वह संभव नहीं है। दरअसल, उनकी बात कुछ इस तरह की है जैसे अत्यन्त गर्मी के मौसम में किसी को कड़कती सर्दी में पहने जाने वाले वस्त्र पहनने को कहा जाय। वस्तुतः गर्मी के अनुरूप और सर्दी में सर्दी के अनुरूप व्यवहार होना चाहिये। अर्थात् समय और परिस्थितियों के अनुकूल आचरण भी अनिवार्य है।

गांधीजी के सिद्धान्तों की सार्थकता वाली बात भी कुछ ऐसी ही है, उन्होंने समय और परिस्थितियों के अनुकूल आचरण किया और बड़े प्रभावशाली ढंग से क्रांति को संभव बना दिया। इतना बड़ा देश, जिसमें शस्त्र रखने की पूर्णतया पाबन्दी, जिसके अधिकांश लोग गांव में रहने वाले हों और हथियार का प्रयोग करना जानते भी न हों, किन्तु इतने भी मूर्ख नहीं कि कोई महान विभूति आकर जब उन्हें यह बोध कराये कि तुम इन विदेशियों के हाथों लूटे जा रहे हो, तो वे समझ न सकें।

ऐसे में प्रश्न यह था कि इन विदेशियों को किस तरह दूर किया जाय?-हथियार तो हमारे पास हैं नहीं, और लड़ाई करनी हमें आती नहीं। इस प्रश्न का जो उत्तर गांधीजी के पास था वह तिलक, राय और सुभाष के पास नहीं था। वह था अहिंसक सत्याग्रह। गांधी जी ने सबको समझाया कि तुम्हारे पास तो सर्वाधिक शक्तिशाली हथियार है—सत्याग्रह की अहिंसक संघर्ष पद्धति। तुम्हें किसी को मारना सीखने की भी जरूरत नहीं। तुम मरना सीखो और इसी सूत्र के सहारे सभी पार उतर सकते हैं।

लोगों ने उनकी बात पर अमल किया और उनके सिद्धान्तों की विजय हुई, देश आज़ाद हो गया किन्तु इसके उपरान्त गांधी जी नहीं रहे। जिन लोगों के हाथ में देश की बागडोर सौंपी गई वे

गांधीजी के परमप्रिय साथी थे किन्तु उनकी नज़र बदलती दुनिया पर थी। उन्हें लगा कि अब गांधी जी की जीवन-दृष्टि से शासन करना सर्दियों के कपड़े गर्मियों में पहनने जैसा है। उन्होंने गांधी जी द्वारा निर्देशित जीवन-पद्धति को पूरी तरह बदल दिया। इसी का परिणाम है कि हम आज की परिस्थितियों में पहुंचे हैं। अतः आज की परिस्थितियों में यह प्रश्न बड़ा सार्थक है कि गांधी जी का जीवन-दर्शन और उनकी संघर्ष पद्धति की प्रासंगिकता क्या है?

समय बदलने के साथ अनेक चीज़ें बदलती हैं, जीवन-दृष्टि भी बदलती है, फिर भी कुछ ऐसा है जो सनातन होता है और जिसका आश्रय लेना हमेशा लाभदायक होता है। गांधीजी द्वारा बताये मार्ग में सत्यनिष्ठा और अहिंसात्मक आन्दोलन के प्रति आस्था की बात सनातन है।

हमारे देश ने जो नई नीति अपनायी उसमें गांधी जी की आर्थिक दृष्टि, सादगी भरी जीवन दृष्टि, दंगों को बढ़ावा न देना आदि बातों पर अमल नहीं किया गया। संघर्ष में अहिंसा का आश्रय लेना भी छोड़ दिया तथा सत्ता-स्थान प्राप्त करने के लिये सत्यनिष्ठा को खो दिया गया; इससे देश को जो अथाह नुकसान हुआ वह किसी से छुपा नहीं है। उनका सत्य का मार्ग और उनकी अहिंसात्मक संघर्ष की रीति यदि देश ने अपनायी होती तो आज देश जो छिन्न-भिन्न होने की स्थिति में है, यह स्थिति कदापि न आती। पंजाब सुलगता न होता, अराजकता सारे देश में पैठ न गई होती।

इसलिये मैं तो मानता हूं कि आज के संदर्भ में भी गांधी जी ने सत्य और अहिंसा का जो दर्शन प्रजा के समक्ष प्रस्तुत किया और जो संघर्ष-पद्धति दी, उसकी प्रासंगिकता कम नहीं हुई है, बल्कि, आज के संदर्भ में वह और भी प्रासंगिक बन गई है।

गांधी जी का जीवन ही संकीर्णता और साम्प्रदायिकता के विरुद्ध था और वह मात्र सिद्धान्त रूप में ही नहीं अपितु व्यवहार में भी। इसी कारण जिस समय हमें स्वराज्य की प्राप्ति हुई, गांधी जी नोआखली में घर-घर लोगों के आंसू पोंछते घूमने लगे, उसमें उन्होंने जात-पात का कोई भेदभाव नहीं रखा। आज पंजाब सुलग रहा है। इन परिस्थितियों में यदि गांधी जी होते तो वह क्या करते, इसकी कल्पना करने की आवश्यकता नहीं। अगर आज वे होते तो इस समय पंजाब के शहर-शहर में और कस्बे-कस्बे में घूमते और सिख और हिन्दू दोनों के आंसू पोंछते, उन्हें आश्वस्त करते। उनके जादुई असर के नीचे यह प्रश्न जितना मुखर आज हो गया है, न हुआ होता।

हिन्दू और सिखों के बीच में परस्पर वह वैर-भाव न था जो आज दिखायी दे रहा है और यह भी अब विद्यमान परिस्थितियों के दबाव के कारण बन रहा है। अतः गांधीजी यदि आज हमारे बीच होते तो उनका मोहन-मंत्र और कृशकाय शरीर पंजाब के घर-घर में घूम रहा होता और निश्चय ही इस समस्या का शीघ्र सुखद अंत हो जाता, ऐसा मेरा विश्वास है। उनके एक ही प्रयास से यह सब संभव हो जाता।

गांधी जी के सामाजिक कार्यों में हरिजनोद्धार और नारी जागृति का प्रमुख स्थान था। वे जब तक जिंदा रहे इन दोनों की स्थिति सुधारने के लिये अथक परिश्रम करते रहे, इससे देश की चेतना को नयी जागृति मिली। किन्तु आज भी हरिजनों की स्थिति में पर्याप्त सुधार नहीं हुआ है। उनके ऊपर अत्याचार बढ़ते जा



वरिष्ठ गांधीवादी चिंतक

रहे हैं। उन्हें और उनकी बस्तियों को आग में झोंक दिया जाता है और उन्हें असह्य परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है।

यह सब अत्यंत असहनीय है और गांधी जी को तो विशेष रूप से असह्य होता। ऐसी स्थिति में यदि वे होते तो अपनी जान की बाजी लगा देते, ऐसा मैं मानता हूं। वे आमरण-अनशन करके स्थिति को सामान्य बनाने के लिये अथक प्रयत्न करते और स्थिति थोड़ी सुधरते ही जहां-जहां हरिजनों पर त्रास और अत्याचार हुआ है वहां-वहां खुद घूमते।

परन्तु यह समस्या हजारों वर्षों से हमारे साथ है, अतः इसे पूरी तरह समाप्त होते सदियां लगेंगी। इस संदर्भ में जितना उनसे हो सका उतना किया, यदि आज होते तो और भी ज्यादा करते। किन्तु जहां सारा देश स्वार्थ में सड़ता हो और हरेक व्यक्ति जातिवाद के ज़हर से ग्रसित हो, वहां एक आदमी चाहे वह कितना ही महान क्यों न हो, करते-करते आखिर कितना कर सकता है? फिर भी राजदरबारी कूटनीति अपनाने वाले इस दीन-हीन पीड़ित प्रजा का जो अवांछित लाभ उठाते हैं, वह गांधी जी हरगिज़ नहीं उठाने देते।

नारी-समस्या भी बड़ी जटिल बन गई है। एक ओर नारी की जागृति—शहर में और शिक्षित वर्ग में, अलबत्ता बढ़ती जा रही है तो दूसरी तरफ नारी की अवहेलना और दुर्दशा भी बढ़ती जा रही है। शिक्षित वर्ग में भी दहेज लेना पैसे कमाने का एक साधन बन गया है। इसके लिये जान तक लेने में जैसे लोगों को कोई पाप लगता ही न हो। गांव की नारियों में अज्ञानता, अक्षमता, खोटी मान्यताएं, अंध श्रद्धा आदि कमज़ोरियां जितनी पहले थीं, उतनी ही आज भी हैं और शहर में जो चेतना दिखायी दे रही है वह भी सिर्फ दिखावे की है।

गांधीजी थे तब भी यही परिस्थितियां थीं। किन्तु उनके, कर्वे जी और अन्य अनेक सदपुरुषों और सामाजिक कार्यकर्ता भाइयों और बहनों के अथाह परिश्रम से ही आज जो थोड़ी चेतना नारी वर्ग में दिखायी दे रही है, संभव बन पड़ी है। उनके जाने के बाद कुछ ही वर्षों में सभी दिशाओं में जो अवनति हुई है उससे हमारा नारी-समाज भी अछूता नहीं रहा।

आज की स्थिति में यदि गांधी जी होते तो नारी-संगठन को विमार्ग पर भटकने से रोकने के लिये प्राणप्रण से जूझते और थोड़े निष्ठावान् और सही दिशा वाले संगठनों की सहायता से उन्होंने इस समस्या को हल करने का प्रयास अवश्य किया होता। नारी मात्र खिलौना नहीं है, श्रृंगार और भोग की वस्तु नहीं है—यह ज्ञान तो उन्होंने कराया ही था, यदि आज वे होते तो इस ज्ञान को और भी तीव्रता से कराते। और देश भर में सौ-दो सो सच्ची कार्य-कर्त्रियों को उन्होंने अवश्य ही तैयार कर दिया होता।

नारियों की यह समस्या भी हमारे साथ हजारों वर्षों से रही है। अतः इसमें पूर्ण सुधार तो गांधी जी होते तो भी सालों साल बाद ही हो पाता। फिर भी यदि वे होते तो कम से कम सही दिशा में परिवर्तन की शुरुआत अवश्य ही संभव बनाते।

गांधी जी का प्रथम कार्य-क्षेत्र दक्षिण-अफ्रीका ही था। सत्याग्रह की संग्रह-पद्धति उन्होंने वहीं पर आजमायी और उन्हीं दिनों अकाट्य सिद्धि भी उन्होंने प्राप्त की।

पर आज दक्षिण-अफ्रीका की सरकार ने दमन-नीति और जाति-भेद द्वारा दमन करने की प्रवृत्ति से मर्यादा का सर्वथा त्याग कर दिया है। इसीलिए तो अनेक देश उसके विरुद्ध क्या कदम उठाये जायें इस बात पर विचार कर रहे हैं।

गांधीजी ने विदेशी माल के बहिष्कार का शस्त्र भारत में बड़ी सफलता पूर्वक प्रयोग किया था। आज राष्ट्रकुल के बहुत सारे देश दक्षिण-अफ्रीका के विरुद्ध इस शस्त्र का उपयोग करने का संकल्प ले रहे हैं। इन दोनों रीतियों में साम्य तो बहिष्काररूपी ही है। किन्तु गांधीजी दुश्मन को भी प्रेम से जीतना चाहते थे, वे अंग्रेज़ी माल के बहिष्कार पर जोर देते थे किन्तु व्यक्ति अंग्रेज से प्रेम ही करते थे। उनके आर्थिक बहिष्कार में वैर की अपेक्षा सुधार का भाव अधिक था।

आज जिन राष्ट्रों ने आर्थिक प्रतिबन्ध का शस्त्र आजमाने का प्रयत्न किया है उनका उद्देश्य मात्र आर्थिक और उसके द्वारा राजनैतिक दबाव डालना है। उनके हृदय में प्रेम नहीं है, सिर्फ

प्रश्न जो पूछे गये

1. राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के निधन के 37 वर्ष बीत चुके। इस बीच देश ने आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक आदि जीवन के सभी क्षेत्रों में बहुविध प्रगति की है, लेकिन यह प्रगति हमने जिस रास्ते चल कर की है वह रास्ता शायद गांधीजी का नहीं था। गांधीजी के जीवन-काल में ही लोकमान्य तिलक, एम. एन. राय, सुभाष चंद्र बोस आदि बहुतेरे ऐसे लोग थे जिन्हें न उनके सत्य और अहिंसा के जीवन-दर्शन में विश्वास था, न ही उनके सत्याग्रह की संघर्ष-पद्धति में। समय बदलता है, समस्याएं बदलती हैं, लक्ष्य बदलते हैं, जीवन-दृष्टि बदलती है। तो आज के संदर्भ में देश के लिए गांधी जी के जीवन-दर्शन और उनकी संघर्ष पद्धति की कोई प्रासंगिकता हो सकती है?
2. गांधीजी धार्मिक पुरुष थे, लेकिन उनकी धार्मिकता में किसी भी प्रकार की संकीर्णता के लिए कोई स्थान नहीं था। जब सारा देश आज़ादी प्राप्त होने की खुशियां मना रहा था, गांधीजी नोआखली में घर-घर घूम कर साम्प्रदायिक सद्भाव स्थापित करने में लगे थे। साम्प्रदायिक एकता के लिए ही उन्होंने अपने जीवन की बलि भी दी। आज पंजाब में एक अलग किस्म की साम्प्रदायिकता सिर उठा रही है, पंजाब समस्या ने साम्प्रदायिक रूप ले लिया है। यदि आज गांधीजी हमारे बीच होते तो हिन्दू-सिख सद्भाव स्थापित करने के लिए क्या करते?
3. गांधीजी आजीवन देश की दलित-पीड़ित मानवता की सेवा में लगे रहे। सामाजिक स्तर पर उन्होंने हरिजनोद्धार का बीड़ा उठाया था। युग-युगों से पीड़ित भारतीय नारी में भी उन्होंने आत्म-विश्वास का भाव भरा, उनमें नयी चेतना जागृत की। सरकार सिर्फ हरिजनों की ही नहीं, बल्कि, अन्य दलित-पीड़ित वर्गों की दशा सुधारने के लिए भी अपनी ओर से प्रयास कर रही है, परन्तु इस दिशा में अभी पर्याप्त जागृति नहीं आई है। हरिजनों पर आज भी संगठित रूप से अत्याचार हो रहा है, उनके गांव जलाए जा रहे हैं, हत्याएं की जा रही हैं। इस बदलते संदर्भ में गांधीजी हमें कौन-सी राह सुझाते? गांवों में नारी आज भी अशिक्षित है, अंधविश्वासों की गिरफ्त में है, जागृत नहीं हुई है। शहरों में नारियों में अपेक्षाकृत अधिक चेतना है, अपने अधिकारों के प्रति सजग हैं लेकिन अधिकांश नारी संस्थाएं मात्र प्रदर्शन की वस्तु बनकर रह गई हैं। नारी-कल्याण के प्रति समर्पित समाज-सेविकाओं का आज भी अभाव है। ऐसी स्थिति में गांधीजी का रुख क्या होता?
4. गांधीजी देश के ही नहीं, समस्त मानवता की धरोहर हैं। उन्होंने सत्याग्रह की संघर्ष पद्धति का पहला प्रयोग ही देश में न कर, दक्षिण अफ्रीका के अश्वेत लोगों पर गोरों के अत्याचारों के विरुद्ध किया। दक्षिण अफ्रीका और नमीबिया में वहां की गोरी सरकार का दमन-चक्र उसी प्रकार चल रहा है, जैसे कि गांधीजी के जीवन-काल में चलता रहा। दक्षिण अफ्रीका की जनता अभी तक अहिंसात्मक ढंग से ही अपने मुक्ति-संग्राम का संचालन करती रही है, लेकिन स्थिति अब इस हद तक असह्य हो गई है कि विश्व के राष्ट्रों ने दक्षिण अफ्रीकी सरकार के प्रति आर्थिक प्रतिबंध लगाने का दृढ़ निश्चय कर लिया है। दक्षिण अफ्रीका की सरकार भी प्रत्युत्तर में अपने पड़ोसी देशों पर प्रतिबंध लगा रही है। गत राष्ट्रकुल शिखर सम्मेलन में भी इस प्रश्न पर विचार हुआ था। क्या दक्षिण अफ्रीका पर आर्थिक प्रतिबंध लगाने की बात गांधीजी के सिद्धांतों के अनुकूल पड़ती है? गांधीजी ने विदेशी माल के बहिष्कार का संदेश देश को दिया था। क्या इसमें और इस आर्थिक प्रतिबंध की बात में कोई तालमेल बैठता है।
5. आज पूरी दुनिया परमाणु युद्ध की आशंका से त्रस्त सर्वनाश के कगार पर बैठी है। दोनों महाशक्तियां अपने-अपने न्यस्त स्वार्थों के लिए शतरंज की चाल चल रही हैं, और शेष विश्व बेबस होकर उनकी ओर देख रहा है। गांधीजी आज हमारे बीच होते तो क्या करते? कौन-सा मार्ग सुझाते?

घृणा है। इस प्रकार गांधीजी की नीति से इसमें अन्तर आ जाता है। गांधीजी भी संभवतः इस आर्थिक बहिष्कार का विरोध न करते किन्तु बहिष्कार एक धारदार तलवार है इस बात को गांधीजी कभी न भूलते। इसलिये बहिष्कार के विरुध दक्षिण अफ्रीका प्रतिबहिष्कार करेगा ही और उसके परिणाम आक्रामक होंगे, इस बात को वे कदापि न भूलते। अतः उनकी नीति इस संबंध में कुछ अलग ही होती।

युद्ध करने के परमाणु शस्त्र अत्यन्त भयानक हैं, राक्षसी हैं, किन्तु आज का विश्व उस भंयकर राक्षस को लगाम लगाने की अपेक्षा उत्तेजित कर रहा है। विश्व की दो बड़ी ताकतें अपना-अपना स्वार्थ सिद्ध करने में पूरे जगत के संभावित नाश के प्रति भी बेखबर बनी हुई हैं।

यदि आज गांधी जी होते तो यह सब उनसे कैसे सहन होता? स्वतंत्र भारत को भी सेनाओं के भरोसे नहीं रहना है, यह कहने वाला वह मनुष्य अणुशस्त्रों को किस रीति से सहन करता?

किन्तु विश्व आज सर्वनाश की दिशा में जिस अंधी दौड़ में लगा है उसे रोकने के लिये गांधी जैसे अनेक गांधियों की शक्ति भी पर्याप्त न बनी होती, ऐसा मैं मानता हूं। वे यदि आज होते तो विश्व-शांति के लिये, अणुशस्त्रों के विनाश के लिये अवश्य ही अपनी आवाज बुलंद करते, लिखित और वाचिक संभाषणों के द्वारा। किन्तु इतिहास की पूरी शक्ति उत्साह पूर्वक जिस दशा में लगी हो यदि वह दिशा सर्वनाश की हो तो उसे नया मोड़ देने वाली कोई **पूर्णतः समर्थ शक्ति नहीं**, पैदा की भी नहीं जा सकती, भले ही उसका नाम मोहन दास कर्मचन्द गांधी ही क्यों न हो, यह हमने इतिहास से ही सीखा है।

हम महानाश की ओर अग्रसर हैं

– विष्णु प्रभाकर

"गांधी जी जिन मूल्यों के लिये संघर्ष करते रहे वे आज कहीं नहीं हैं। क्यों नहीं हैं, यह शोध का विषय है। कुछ शब्दों में उसे बताना बहुत कठिन है। यह भी तो हो सकता था कि स्वयं गांधी जी बिना समझौता किए अपने मूल्यों में समयानुकूल कुछ परिवर्तन कर लेते। अपने जीवन में भी वे निरन्तर विकसित हुए हैं। अब भी होते और तब शायद उनके मूल्य अधिक सार्थक होते और प्रभावशाली।

अब तो हम महानाश की ओर अग्रसर हैं। 21 वीं सदी तक पहुंचते-पहुंचते आदमी की जो पूंछ घिस गई थी वह निकल आयेगी।"

वे हमारे बीच होते तो उनसे जो कुछ बन पड़ता उतना सब कर मिटते भले ही उन्हें सफलता मिलती या न मिलती, इस पर विचार नहीं करते। अतः असहय वेदना का बोझ अपने हृदय पर लेकर जीवन पूर्ण कर देते।

शायद इसीलिये जगत का तंत्र-चलाने वाली महाशक्ति ने उन्हें वह दिव्य दृष्टि प्रदान की जिससे उन्हें निकट भविष्य में होने वाली अवनति, स्वार्थपरता और जटिल हालातों का भान हो गया और गांधी जी ने भारत को स्वतंत्र कराने का अपना महत् कार्य पूर्ण करके निर्वाण प्राप्त कर लिया।

(पृष्ठ 5 का शेषांश)

गांधी जी का अभाव

नहीं, दुर्बल-हृदयों की नहीं, वीरों की, सिर पर कफ़न बांधकर चलने वालों की अहिंसा होनी चाहिए। अपने सम्पूर्ण शौर्य में अहिंसा को जिसने अपने भीतर उतारा, अपने कर्म में प्राणवंत किया, उसकी निर्भयता के सामने काल भी पनाह मांगता मिलेगा।"

महादेव देसाई ने गांधीजी की अहिंसा का यह विभूति-विवेचन करते हुए आगे कहा है कि व्यक्ति, समाज, देश एवं विश्व की ऐसी कौनसी व्याधि है, हिंसा है, जो अहिंसा को समर्पित ऐसे बलि-वीर के सम्मुख अपना हठ कायम रख सके।

ऊपर का यह वक्तव्य कोरा आदर्शवाद या केवल बड़ों की बातें ही न समझ लिया जाए। ऐसे प्रसंग घटित, प्रमाणित हुए हैं। गांधीजी ने हिंसा से घिरे कई व्यक्तियों के हृदय-दौर्बल्य को अविचलित शौर्य में बदला है। एक और उदाहरण स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद की दिल्ली का है–

उन दिनों वह दिल्ली में थे। वहां के मुसलमान बहुत परेशान थे। एक दिन 60-70 प्रतिष्ठित मुसलमान, जिनमें ख़ानबहादुर अब्दुल्ला जैसे मुस्लिम लीगी भी थे, उनसे मिलने आये और देर तक अपनी दर्दभरी कहानी सुनाते रहे।

गांधीजी ने पूछा, "आप सब कह चुके तो अब मेरे एक सवाल का जवाब दीजिये कि आप लोग भारत में रहना चाहते हैं या पाकिस्तान जाना चाहते हैं?"

कुछ देर तक कोई कुछ नहीं बोला। फिर ख़ानबहादुर अब्दुल्ला ने बड़ी दर्दभरी आवाज में कहा, "महात्माजी, हम लोग यहीं रहना चाहते हैं।"

कुछ क्षण गांधीजी सोचते रहे। अनंतर बोले, "फिर मेरा काम आसान है। आपकी परेशानियों का समाधान भी आसान है। आप यहीं रहने और यहीं मरने का पक्का इरादा कर लीजिये। मौत बार-बार नहीं आती। खुदा पर भरोसा रखिये। जो हथियार आपके पास छुपे पड़े हों, सब डिप्टी कमिश्नर को दे दीजिये। जब लोग आपके घर पर हमला करने आयें तो मरने के लिए अपनी गर्दन झुका दीजिये। मेरे पास यही उपाय है और मेरा विश्वास है कि इसी उपाय में आपकी रक्षा है। जहां रात को सबसे ज्यादा हमले का खतरा हो, वहां मैं आपके साथ सोने को तैयार हूं।"

सभा में एकदम सन्नाटा छा गया। तीन-चार मिनट की शांति के बाद ख़ानबहादुर अब्दुल्ला ने पांव छूकर कहा, 'ठीक है महात्माजी, अब मैं यहीं मरूंगा। मैं आपकी बात समझ गया।'

थोड़े दिनों बाद दंगे समाप्त हो गये। परिवार के कई लोगों के पाकिस्तान चले जाने के बाद भी ख़ानबहादुर अब्दुल्ला मृत्युपर्यंत यहीं रहे। □

–12, फीरोज गांधी मार्ग,
लाजपतनगर-III, नई दिल्ली-110024

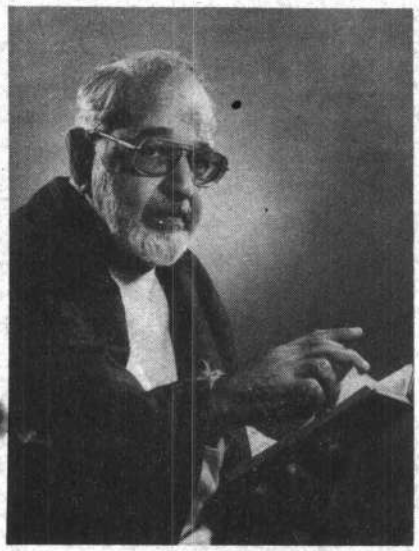
निबंध

पानी का स्वर

— स० ही० वात्स्यायन

कवि हूँ—या नहीं हूँ तो होने की आकांक्षा लिये रहा हूँ। इसलिए सन्नाटे के तरह-तरह के स्वर सुनने का अभ्यासी हूँ। कवि को स्रष्टा कहते हैं। वह क्या 'न-कुछ' में से 'कुछ' की (**नासदासीत् नो सदासीत्**) ऐसी सृष्टि करता है जिसे वास्तव में अनादि कहा जा सकता है? यह मान लेना कठिन है। वैसी एक ही सृष्टि हो सकती है और उसका एक ही स्रष्टा हो सकता है—और वह स्रष्टा भी अनाद्यन्त होगा। कवि जो कवयन करता है वह न-कुछ में से कुछ पैदा कर देने का जादू नहीं होता, वह अव्यक्त में से व्यक्त को रूपायित करने का जादू होता है। अव्यक्त में से व्यक्त का आविष्कार, उद्धार, रूपायन—जहाँ तक कवि का सवाल है सृष्टि यही है।

जल परम्परा से अव्यक्त का प्रतीक है। सभी कुछ उसी में से प्रकट होता है। सबसे पहले अव्यक्त था जिसमें रूप प्रकट हुआ, और सबसे पहले जल था जिसमें तरंग उठी और एक सत्ता भासमान-एक ही बात को कहने के ये दो तरीके हैं। हम लोगों ने 'होना' क्रिया-रूप के अधीन **अस्ति** और **भवति** दोनों को मान लिया है—मान क्या लिया है, इतना ही है कि साधारण बोल-चाल में दोनों में भेद करने से कतरा जाते हैं क्योंकि उधर बढ़ना तत्काल तत्त्व-मीमांसा के जाल में उलझ जाना है। लेकिन कवि का क्षेत्र एक तरह से सम्भूति तक ही है। कवयन अव्यक्त को व्यक्त की परिधि में ले आना है: उससे पहले उसकी सत्ता कैसी या क्या थी, इस प्रश्न का उत्तर भी कवि दे ही यह बिल्कुल आवश्यक नहीं है। इसका उत्तर वह जानता भी है, ऐसा भी कोई दावा उसका नहीं है। श्रीकृष्ण ने भी जब कहा '**सम्भवामि युगे-युगे**' तब उन्होंने यो रूप लेने अथवा अवतरित होने की बात ही कही: अवतरित होने से पहले जो भी सनातन सत्ता है उसके बारे में उन्होंने कुछ नहीं कहा—या उतना ही कहा जितना उस वाक्य में निहित ही है। 'मैं अवतरित होता हूँ' यह कहने में यह तो निहित है ही कि अवतरण से पहले मैं हूँ। यह पूछने का कोई अर्थ नहीं है कि अवतरित होने से पहले वह कहाँ हैं, क्योंकि जहाँ भी वह पहचान में आते हैं वह पहचान में आना ही तो अवतरित होना है—नहीं तो अनपहचानी भी उनकी सत्ता तो है ही। क्या यह प्रश्न कुछ अर्थ रखता है कि अगर समुद्र-मंथन से ही अमृत की प्राप्ति हुई तो क्या उससे पहले सुर-गण अमर नहीं थे? अव्यक्त से व्यक्त की प्राप्ति की बात ही उस कोटि की है जहाँ पहले और पीछे, हेतु और हेतुमत्, देश और काल की बातें बाहर छूट जाती हैं। ये सब नियम तो व्यक्त को बाँधने, समझने, समझाने के उपाय हैं। जो इनसे परे है वही तो अव्यक्त है।



लेखक

अव्यक्त। आदि अंत रहित, रूपाकार-विहीन, अजस्र अछोर जल। वैदिक द्रष्टा का रूपक है कि प्रजापति की वीणा के स्वर से उस जल में लहर उठी, उससे स्वर उपजा; और वहीं से सृष्टि का आरम्भ होता है। इसीलिए पानी का स्वर पहला स्वर है और सृष्टि का रहस्य उसमें छिपा है। इसीलिए सभी साधक पानी का स्वर सुनने का प्रयत्न करते हैं और जैसे-जैसे साधना आगे बढ़ती है वे भी जल के कल-कल से आगे बढ़ते हुए शान्त स्तब्ध नीरव जल का स्वर सुनने में दत्तचित्त होते हैं—सन्नाटे का स्वर सुन पाने का अभ्यास करते हैं। ज़ेन साधना में तो पानी के स्वरों का विशेष महत्त्व है। ज़ेन कवि तो पुराने ताल में मेढ़क के छलांग लगाने की बात कह कर एक तरह से चुप ही हो गया। उसने अपने **हाईकु छंद** की अंन्तिम पंक्ति में जो पाँच वर्ण अथवा तीन शब्द रखे उनका वाच्य अर्थ केवल 'पानी का स्वर' ही होता है। लेकिन पढ़ने वालों और उससे भी अधिक अनुवाद करने वालों के लिए वह एक गुत्थी छोड़ गया। पानी का स्वर—वह भी पानी का स्वर—यानी क्या? पानी का क्या एक स्वर है? छोटे कवि ने बाशो के प्रसिद्ध हाईकू का अनुवाद करते हुए पहली बात तो पानी के स्वर को एक मूर्त बिम्ब का आधार बनाने के लिए उसे मेंढ़क के जल में कूदने के स्वर तक ही सीमित कर लिया:

ताल पुरान
कूदा दादुर
गुडुप्।

निश्चय ही यह अन्तिम शब्द 'गुडुप्' हमारे सामने एक श्रुतिगम्य, ध्वनि-बिम्ब प्रस्तुत करता है और उसके सहारे पुराने ताल में (बूढ़े?) दादुर की कूद भी मूर्त हो आती है। लेकिन बाशो का छोटा-सा छन्द क्या केवल उतनी ही बात कहना चाहता है? क्या केवल एक गोचर अनुभूति का ही सम्प्रेषण करना चाहता है? क्या मूल छंद का 'पानी का स्वर' उन आदिम जलों तक ही हमें नहीं ले जाता जो प्रजापति की वीणा के आद्य स्वर से काँपते हैं? तब क्या वह पुराना ताल इस सारे विश्व-ब्रह्माण्ड के साथ एक नहीं हो जाता जो न जाने कब से चला आ रहा है—पुराना है और दिन-ब-दिन अधिक पुराना होता जा रहा है—जिसके सारे व्यक्त रूपाकार प्राक्तन अव्यक्त को उसी तरह घेरे और अपने बीचों-बीच समेटे हुए हैं जिस प्रकार पुराने ताल के घाट और सीढ़ियाँ एक स्तब्ध जल-राशि को? उसमें मेंढक छलांग लगाता है और अव्यक्त का सन्नाटा बज उठता है: प्रकट विश्व-ब्रह्माण्ड के हृत्कूप में बसे हुए अविचल निश्चल अव्यक्त के साथ उसके सारे सम्बन्ध न केवल एक फैलती हुई गूँज की तरह हमारे अन्तःस्थल को भी लहरा जाते हैं वरंच हमारी स्मृति के भीतर कहीं यह बोध भी जगा जाते हैं कि वहाँ भी तो एक की ओट एक असंख्य पुराने ताल हैं, असंख्य जल-राशियाँ हैं जिन्हें हमारे घटमान के असंख्य मेंढक अपनी कूद से विचलित कर देते हैं-(अपनी असंख्य छलांगों से विचलित किये जाते हैं!)—और इस प्रकार हमारे भीतर अंतहीन व्यक्त अर्थात् **भव** और अंतहीन अव्यक्त **परम व्योम** के अंतहीन सम्बन्धों की गूँजें, अनुगूँजें जगा जाते हैं...वही तो पानी का स्वर है—क्या उसे एक 'गुडुप्' में सीमित कर देना एक किरण की चमक के लिए स्वयं किरणों के स्रोत सूर्य को ओट कर देना नहीं है? छोटे कवि ने अनुवाद करते समय हार मान ही ली और हाईकू की अन्तिम पंक्ति से गुडुप् हटा कर सीधे-सीधे लिख दिया 'पानी का स्वर'। आखिर बाशो ने भी तो यही किया था—सीधे-सीधे लिख दिया था **'मिज़ू नो ओटो'**-पानी का स्वर! जापानी भाषा में **मिज़ू** पानी को कहते हैं। विशेष सन्दर्भों में इस शब्द के साथ एक सम्मान-सूचक पद **ओ** लगाया जाता था-**ओ मिज़ू** कहने का आशय कुछ वैसा ही होता था जैसा हमारे गंगा के अथवा तीर्थों के पानी को 'जल' कहने से होता है। नलके से 'पानी' आता है, गंगा से 'जल' लाते हैं। उसी प्रकार विशेष सन्दर्भों में पुस्तक को ग्रन्थ अथवा और भी अधिक श्रद्धा देने के लिए 'ग्रन्थ साहब' कहते हैं, मन्दिर को 'मन्दिर जी' कहते हैं, इत्यादि। ज़ेन साधक भी **मिज़ू** को **ओ मिज़ू** कहता है और इसी प्रकार **चाय** को भी **ओ चा** कहता है—**श्री चाय** अथवा **चाय जी**। यों कहने से चाय या पानी में तो कोई परिवर्तन नहीं आता पर उसके साथ हमारे सम्बन्ध के निरूपण में पवित्रता का, श्रद्धा का भाव जुड़ जाता है। यों तो जब सभी कुछ में ईश्वर (अथवा देवत्त्व) बसता है तो सभी के साथ हमारा सम्बन्ध वैसा ही होना चाहिए। सभी कुछ पवित्र है और उसका संस्पर्श हमें पवित्रता का संस्पर्श देता है जिसे श्रद्धा के साथ ग्रहण करना चाहिए। यही भाव तो भागवत भाव है। इसे हम सदैव शब्दबद्ध न भी करें, इस भाव में जीना ही सच्चा जीना है।

पानी के स्वर। असंख्य स्वर। विश्व के साथ हमारे सम्बन्धों में छिपे पवित्रता के असंख्य संकेत। श्रद्धा के असंख्य आह्वान। हम कहते हैं **संसार** अथवा **संसृति** बहना है और संसृति बह कर मिलना है, बहावों का संगम है। 'बहना' में फिर क्या वही पानी का स्वर नहीं है? व्यक्तों के बीच अव्यक्तों की गूँज नहीं है? वही कवि

जल परम्परा से अव्यक्त का प्रतीक है। सभी कुछ उसी में से प्रकट होता है। सबसे पहले अव्यक्त था जिसमें रूप प्रकट हुआ, और सबसे पहले जल था जिसमें तरंग उठी और एक सत्ता भासमान हुई। एक ही बात को कहने के ये दो तरीके हैं।

सुनता है। मेरे एक कवि बंधु ने कहा है कि **'मेरे मन में पानी की अनेक स्मृतियाँ हैं'**: शायद वह उन आदिम जलों की यथार्थता के कुछ अधिक निकट से बात कर रहा है क्योंकि वह 'पानी की स्मृतियों' की बात कह रहा है। मैं तो इससे दो-चार सीढ़ी पहले ही रुक कर केवल इतना ही कह सकता हूँ कि मुझ में **पानी के स्वरों की अनेक स्मृतियाँ हैं।** मैंने पतली ग्रीवा वाली सुराही के लुढ़क जाने से बहते पानी का स्वर भी सुना है और अपने ही बनाये छोटे से ताल में गिरते हुए पहाड़ी झरने का स्वर भी; पर्वती प्रदेश में छतों पर जमी हुई बर्फ़ के पिघल कर बूँद-बूँद रिसने का स्वर भी और किनारे लगी नाव पर नदी की लहरों की थपक भी। मैंने काँच के जल में डूबती गागर के पानी से भरने का स्वर भी सुना है, तूफ़ानी बादलों के फट पड़ने से सागर पर पड़ती हुई पानी की मार भी। और ये केवल दो-चार उदाहरण हैं: पानी के स्वर की बात सोचने लगता हूँ तो मानो पानी के बांध टूट जाते हैं-कोई सीमा नहीं रहती। ओस की अथवा आँसू की ढरकन का स्वर भी तो पानी का ही स्वर है और नदी के बाँध टूटने का स्वर भी पानी का स्वर है। नीलकंठ छोटी मछली को पकड़ने के लिए धन-खेत में फैले पानी पर गिरता है और उड़ जाता है, वहाँ भी पानी का एक स्वर है। और पहाड़ी घराट के नीचे मानो मुँह से झाग छोड़ते हुए क्रुद्ध पानी का स्वर भी पानी का ही स्वर है...और कभी-कभी सन्नाटे में अपनी ही रगों में दौड़ते हुए लहू की जो सनसनाहट कानों को सुनाई दे जाती है वह भी क्या पानी का ही स्वर नहीं है?

पानी का स्वर...पानी के स्वर। पानी के स्वर सुनते-सुनते न जाने कहाँ से कहाँ पहुँच जाता हूँ। कह सकता हूँ कि पानी के स्वर सुनते-सुनते ही कवि बन जाता हूँ। शायद पानी के स्वर सुनना ही कवयन है। लेयोनार्दो दा बिंची ने घंटी के नाद की बात कही थी—उसे भी हज़ार तरह सुना जा सकता है या कह सकते हैं कि उसके हज़ार शब्द हैं। शायद पश्चिमी सभ्यता में स्थूल का आग्रह बहुत अधिक होता है इसलिए लेयोनार्दो ने—ध्वनि की बात कही। लेकिन लहर की बात अंततोगत्वा द्रव के कम्पन की बात है, पानी के स्वर की बात है—प्रजापति की वीणा से अव्यक्त के सागर में उठने वाली लहर की बात है। काँपना ही जीना है, अस्तित्व पाना है। अनढरे आँसू का भी एक स्वर है-थरथराते पानी का स्वर।

कहते-कहते या सोचते-सोचते मैं चुप हो जाता हूँ। एक सिहरन उठती है। एक सन्नाटा मुझे सुनाई पड़ने लगता है। उस सन्नाटे के असंख्य स्वर हैं। सन्नाटे के तरह-तरह के स्वर सुनने का अभ्यासी हूँ। कवि हूँ-या नहीं भी हूँ तो। □

कैवेंटर्स ईस्ट
कैवेंटर लेन, नई दिल्ली-110021

प्रेमचन्द ने गोदान की रचना कैसे की



सन् 1986 में प्रेमचन्द की अमर कृति 'गोदान' के प्रकाशन के पचास वर्ष पूरे हो रहे हैं। यह वर्ष उनकी अत्यन्त लोकप्रिय कहानी 'कफ़न' और प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना का स्वर्ण जयन्ती वर्ष भी है जिसके प्रथम अधिवेशन की अध्यक्षता प्रेमचन्द ने सन् 1936 में की थी।

प्रेमचन्द का निधन 1936 में ही आठ अक्तूबर को हुआ था। इस प्रकार उनके निधन के भी पचास वर्ष पूरे हो रहे हैं।

– सम्पादक

– डा० कमल किशोर गोयनका

ईश्वर की सृष्टि और कलाकार की रचना दोनों की ही सृजन-प्रक्रिया रहस्यपूर्ण है। कलाकार स्वयं नहीं जानता कि रचना कैसे हो जाती है। अनेक बार रचना हो जाने के पश्चात् कलाकार अनुभव करते रहे हैं कि वे इस प्रकार की श्रेष्ठ रचना कैसे कर सके। कलाकृति के वास्तविक सृजन तक कलाकार दो स्तरों पर सर्जनात्मक संवेदनाओं से गुज़रता है। एक, जब उसके मानस में रचना का बीज़ रूप में जन्म होता है, दूसरे जब यह बीज रूप रचना-शरीर में रूपायित होता है। सम्पूर्ण सृष्टि में बीज तत्व के अनुरूप ही भावी सृष्टि के रूपाकार और गुणावगुण निश्चित होते हैं, परन्तु कला-संसार में सदा ऐसा होना सम्भव नहीं होता। कलाकार जब वास्तविक सृजन में लीन होता है तब रचना कभी बीज भाव से अलग रूप भी धारण कर लेती है। कथा-साहित्य के सृजन में यह स्थिति अनेक कलाकारों का अनुभव रहा है।

प्रेमचन्द का गोदान एक अमर रचना है। उनके पाठकों एवं समीक्षकों के मन में सदैव यह उत्सुकता रही है कि इतनी श्रेष्ठ रचना का जन्म कैसे हुआ होगा। अपने बीज रूप से यह प्रेमचन्द के मन में किस प्रकार उदित हुई होगी। क्या गोदान की रचना इस बीज भाव के अनुरूप ही हुई या रचना-प्रक्रिया के दौरान इसमें अन्तर भी आया? गोदान के बीज भाव और रचना प्रक्रिया का इतिहास अभी तक अज्ञात था, लेकिन रचना से पूर्व प्रेमचन्द द्वारा लिखी गई दो पृष्ठ की रूपरेखा प्राप्त हो जाने से 'गोदान' की रचना का रहस्य कुछ अवश्य ही प्रकट हो गया है। यह रूपरेखा उनके पूर्व उपन्यासों की रूपरेखाओं के समान ही अंग्रेज़ीभाषा में तीन पृष्ठों में है। इन तीन पृष्ठों में से केवल दो पृष्ठ ही उपलब्ध हैं जिनमें क्रम संख्या-3 से 12 तक कथा-सूत्र, पात्रों की चरित्र-रेखाएं, दृश्यों की रूप-रचना आदि का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। पहला पृष्ठ उपलब्ध नहीं है जिसमें क्रम संख्या 1 तथा 2 के अन्तर्गत कथा के सूत्र लिखे गए होंगे।

'गोदान' की इस आरम्भिक रूपरेखा और उसके आधार पर रचित 'गोदान' उपन्यास की तुलनात्मक स्थितियों पर कुछ भी कहने से पहले रूपरेखा को मूल रूप में प्रस्तुत करना उचित होगा। यहां इस रूपरेखा का हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत है:–

3. होरी गाय खरीदता है। सारा गांव देखने आता है। शोभा उदासीन है, लेकिन हीरा ईर्ष्या से भर उठता है। वह गाय को विष देता है। होरी उसे देखता है, लेकिन पुलिस में उसकी रिपोर्ट नहीं करता।

4. दशहरा उत्सव को मनाने के लिए सारा गांव ज़मींदार के पास जाता है। होरी अपना जौ का भण्डार बेचता है। वह अपना चेहरा छिपा नहीं पाता (संभवतः ज़मींदार से-लेखक) वह (ज़मींदार-लेखक) उसका लगान बढ़ाना चाहता है। ज़मींदार का प्रभावित होना आवश्यक है। पार्टी ज़मींदार के पास जाती है, वहां एक नाटक होता है, एक प्रदर्शन, एक धरती-यज्ञ। ज़मींदार दयालु एवं दानी है। वह अपनी कहानी कहता है। वह डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का सदस्य भी है। (वह अध्यक्ष पद के लिए खड़ा होता है, यह अंश कटा है-ले०) वहां अफसरों को प्रसन्न करने के लिए दावतें एवं दान देता है। किसान सन्तुष्ट होकर लौटते हैं। झुनिया भी प्रदर्शन में आती है। गोबर प्रस्ताव करता है। वह विवाहित नहीं है। विवाह के लिए धन चाहिए। झुनिया आत्म-समर्पण कर देती है।

5. झुनिया के एक पुत्री (पुत्र) होता है-पंचायत। गोबर कलकत्ता भाग जाता है। पंचायत भारी दण्ड वसूलती है। प्रायश्चित के लिए होरी को तीर्थ-यात्रा पर जाना पड़ता है। उसकी पैतृक सम्पत्ति गिरवी रख दी जाती है। वह ब्याज देने में असमर्थ है। गोबर वापस नहीं आता। तब सोना का विवाह होता है। धन है

न सम्पत्ति। वह अब एक दैनिक श्रमिक है। लड़कियां भी उसके साथ काम करने जाती हैं। सम्पूर्ण मानसिकता बदल जाती है।

६. सम्पत्ति को छुड़ाना है। लड़की ('बेच दी गई', यह अंश कटा है-लेखक) की शादी हो जाती है। सम्पत्ति अधिकार में आ जाती है। तब वृद्धि (जायदाद) में बढ़ोतरी। महुआ के लिए होरी का भाइयों के साथ झगड़ा। होरी पिटता है। वह भाइयों से मुकदमा लड़ता है। भाइयों को सज़ा हो जाती है। होरी (लाना है, कटा है-ले०) दृश्य का आनन्द लेता है, परन्तु अन्त में परिवार की देखभाल करता है।

7. भोला के लड़के अलग हो जाते हैं। झुनिया मर जाती है। उसकी एक मात्र पुत्री। भोला उसके बच्चे का पालन-पोषण करने लगता है। वह अपना हिस्सा बेटों को दे देता है और ('एक साधु बन जाता है,' अंश कटा है-ले०)। ज़मींदार लड़की का पालन-पोषण करता है।

8. ज़मींदार का बड़ा लड़का वकील, कौंसिल का सदस्य,पल नौक है। उसका परिवार उसे जाति से बहिष्कृत कर देता है। वह एक सामाजिक कार्यकर्ता है तथा किसान उसका सम्मान करते हैं।

9. होरी की छोटी लड़की बेच दी जाती है। फसल इतनी ही होती है जिससे केवल लगान दिया जा सके। जानवरों को खिलाना था, अपना पेट भी भरना था और परिवार का भी। वह क्या कर सकता था? वह शरीर से कमज़ोर था। झिंकी आजीविका के लिए कठोर परिश्रम कर रही थी। ऐसी स्थिति में वह वृद्ध आदमी अपनी पत्नी को बिना बताए लड़की को बेच देता है। वह अपनी शर्मिन्दगी छिपाने के लिए एक कहानी गढ़ लेता है।

10. गोबर एक सौम्य व्यक्ति बनकर लौटता है। बाहर रहने के कुछ अनुभव बताता है। वह झुनिया को भूल गया है, परन्तु जब सन्देहास्पद साधनों से काफी धन कमा लेता है, उसमें आध्यात्मिक जागृति होती है और जल्दी ही घर लौट आता है। उसका पिता मृत्यु-शैय्या पर है, लेकिन वह फिर अपने घर में जगह नहीं देता है। गोबर फिर झुनिया के साथ रहने लगता है।

11. भोला एक बहुत छोटी उम्र की विधवा को पत्नी बनाकर लाता है। वह होरी के साथ रहने को आता है। उसके लिए एक झोपड़ी बनाई जाती है। वह चोरी करने लगता है। क्योंकि उसे कोई काम नहीं मिल पाता। जंगी इस स्त्री की ओर आकर्षित होता है और वे चुपके-चुपके मिलने लगते हैं। एक दिन वह स्त्री उसे छोड़ देती है और जंगी के पास चली आती है। भोला ('दुख से मर जाता है,' अंश काट दिया है-ले०) बेशर्म बनकर वर्षों जंगी के साथ रहता है। एक दिन उसकी पत्नी (अस्पष्ट) उसे फटकारती है और झाड़ू से पीटती है। भोला का अन्त हो जाता है।

12. थका-हारा होरी लस्टम-पस्टम अपनी जिन्दगी घसीटता है। गोबर अप्रत्यक्ष रूप में अपनी माता के माध्यम से उसकी मदद करता है। जो निष्ठा से पति की सेवा करती है। अंत में उसका समय आता है और वह मर जाता है। गोबर उसके लिए गोदान करता है।

कृषि प्रदर्शनियां, उन्नति, साहित्यिक आन्दोलन, चीनी मिलें, सहकारिता का भी विवरण देना है।

गोदान की यह आरम्भिक रूपरेखा सृजन-प्रक्रिया के अनेक रहस्यों को उद्‌घाटित करती है। प्रेमचन्द के मानस में उत्पन्न गोदान के बिम्ब की एक झलक तो इस रूपरेखा से मिल ही जाती है। साथ ही सृजन-प्रक्रिया के दौरान वे किन कथा-प्रसंगों को छोड़ देते हैं और किन नए प्रसंगों की अवतारणा करते हैं, इसका रहस्य भी इस रूपरेखा और कृति को साथ-साथ रखने से उद्‌घाटित होता है। प्रेमचन्द के सम्बन्ध में समीक्षकों की यह आम धारणा रही है कि वे आरम्भिक रूपरेखा का आधार बनाकर ही रचना में प्रवृत्त होते हैं और तदनुरूप ही कृति का निर्माण करते हैं। गोदान की यह रूपरेखा न केवल इस सर्वमान्य मान्यता को झुठला देती है, बल्कि प्रेमचन्द की सृजन-क्षमताओं का चित्र उपस्थित करते हुए यह स्पष्ट करती है कि प्रेमचन्द किस रूप में और कितनी मात्रा में पूर्व-निर्धारित रूपरेखा से स्वयं को मुक्त करके रचना को उसकी स्वाभाविक प्रक्रिया में विकसित होने देते हैं। कोई भी रचना बंधे-बंधाए फार्मूले के आधार पर निर्मित-होकर महान नहीं बन सकती। गोदान की यह रूपरेखा और उपन्यास का तुलनात्मक अध्ययन इस धारणा की सत्यता को सिद्ध करता है। आइए, देखें, प्रेमचन्द ने रूपरेखा के अनुरूप कहां और कितनी रचना की है तथा कहां और कितने नये कथा-प्रसंगों एवं चरित्र-रेखाओं को प्रस्तुत किया है।

3. क्रम संख्या: 3 में दिए गए कथा-सूत्र कृति में भी लगभग उसी रूप में चित्रित किए गए हैं। होरी गाय खरीदता है और सारा गांव देखने आता है। होरी के दोनों भाइयों—सोभा एवं हीरा की प्रतिक्रिया दूसरी होती है। वे गाय को देखने नहीं आते। 'गोदान' उपन्यास में प्रेमचन्द ने इसी सम्बन्ध में लिखा है, "सारा गांव गाय देखने आया। नहीं आए तो सोभा और हीरा जो अपने सगे भाई थे।" हीरा तो ईर्ष्या से भर गया और गाय को विष खिला दिया। रूपरेखा और उपन्यास दोनों में होरी विष खिलाते हुए हीरा को देखता है लेकिन पुलिस में रिपोर्ट नहीं करता। इस प्रकार क्रम संख्या: 3 में दिए गए कथा-सूत्र ही कथा की रचना के आधार बनते हैं।

4. क्रमसंख्या 4 से प्रेमचन्द ने अनेक कथा-सूत्रों को ग्रहण किया और तदनुरूप कथा की सृष्टि की है, लेकिन कुछ प्रसंगों को उपन्यास में छोड़ दिया गया है। रूपरेखा के अनुसार, गोदान में ज़मींदार के यहां दशहरा का उत्सव होता है, होरी शगुन में रुपये देता है, ज़मींदार के यहां एक धरती-यज्ञ और प्रहसन होता है। रूपरेखा के अनुसार होरी जौ का भण्डार बेचकर शगुन के रूपये देता है, परन्तु उपन्यास में ये रुपये बांस बेचकर प्राप्त करता है। रूपरेखा में ज़मींदार किसानों के सम्मुख अपनी राम-कहानी कहता है, जबकि उपन्यास में वह केवल होरी से बातचीत करता है और अपनी आर्थिक

कठिनाइयों की कहानी कहता है। दूसरे, उपन्यास में लगान बढ़ाने और होरी का चेहरा छुपाने वाला प्रंसग भी नहीं है। इसके अतिरिक्त झुनिया और गोबर का प्रसंग भी रूपरेखा के अनुसार उपन्यास में नहीं है। उपन्यास में झुनिया और गोबर इस समारोह में नहीं आते और न ज़मींदार के यहां मिलते हैं। उपन्यास में यह प्रसंग एकदम बदल गया है। गोबर और झुनिया की पहली मुलाकात गाय लाते समय होती है। हां, रूपरेखा के समान उपन्यास में भी वह गोबर के सम्मुख आत्म-समर्पण कर देती है।

5. क्रम संख्या: 5 के अधिकांश कथा-प्रसंग उपन्यास में छोड़ दिए गए हैं। उपन्यास में न तो झुनिया के लड़की होती है (उसके मंगल नाम का पुत्र होता है), न पंचायत और न गोबर कलकत्ता भागकर जाता है। झुनिया को रखने के दण्ड-स्वरूप गांव वाले होरी को जाति से निकाल देते हैं लेकिन रूपरेखा के समान उपन्यास में होरी प्रायश्चित के लिए न तो तीर्थ-यात्रा पर जाता है और न पैतृक सम्पत्ति गिरवी रखी जाती है। उपन्यास में रूपरेखा के अनुरूप होरी दैनिक श्रमिक भी नहीं बनता। उपन्यास में गोबर गांव छोड़कर भागता तो अवश्य है, लेकिन वह कलकत्ता के स्थान पर लखनऊ जाता है। हां, सोना के विवाह का प्रसंग रूपरेखा और उपन्यास दोनों में ही है।

6. क्रम संख्या 6 की कथा भी प्रेमचन्द ने उपन्यास में नहीं दी है। उसके सभी महत्वपूर्ण प्रसंग रचनात्मक धरातल पर आने से रह गए हैं। उपन्यास में होरी मज़दूरी करके सम्पति नहीं छुड़ाता और न महुआ के कारण भाइयों में झगड़ा होता है। होरी के पिटने, भाइयों पर मुकदमा चलने, भाइयों को सज़ा होने तथा इस पर होरी का आनन्द अनुभव करने का प्रसंग उपन्यास में नहीं है। लेखक ने उपन्यास से इस सारे प्रसंग को ही निकाल दिया है। होरी के चरित्र का इन दिशाओं में विकास करना सम्भवतः प्रेमचन्द को उचित प्रतीत नहीं हुआ।

7. क्रम संख्या 7 में झुनिया के मरने तथा उसकी लड़की का ज़मींदार द्वारा पालन-पोषण करने के जो प्रसंग दिए गए हैं, वे गोदान में नहीं है। गोदान में न तो झुनिया मरती है और न ज़मींदार उसकी लड़की (लड़के) का पालन-पोषण करता है। उपन्यास में झुनिया अंत तक जीवित रहती है और उसके बेटे मंगल का पालन-पोषण पिता और दादा करते हैं। इस प्रकार प्रेमचन्द ने सभी प्रसंगों में परिवर्तन कर दिया है।

8. क्रम संख्या : 8 के कथा-प्रसंगों को भी उपन्यास में कोई स्थान नहीं मिला। राय साहब के, उपन्यास में न तो दो पुत्र हैं। और न उसका बेटा झुनिया की पुत्री से शादी करता है। उपन्यास में राय साहब का लड़का रुद्रपाल मालती की छोटी बहन सरोज से विवाह करता है और इंग्लैण्ड चला जाता है। रूपरेखा के अनुरूप उपन्यास में रुद्रपाल का चरित्र भी विकसित नहीं होता। वह न तो म्यूनिसिपल नौकर है, न राष्ट्रवादी नेता और न किसानों का सम्मान प्राप्त करने वाला सामाजिक कार्यकर्ता। उपन्यास में तो वह पिता पर दस लाख रुपये का दावा करता है। इस प्रकार राय साहब के पुत्र का चरित्र तो कुछ दूसरे ही रूप में सामने आता है।

9. क्रम संख्या 9 के अनुरूप उपन्यास में भी होरी पुत्री को बेचता है लेकिन रूपरेखा के समान पत्नी की जानकारी के बिना ऐसा नहीं करता। उपन्यास में होरी तथा धनिया दोनों सहमत होते हैं तभी रूपा दो सौ रूपये लेकर बेची जाती है। इस कथा-सूत्र से ज्ञात होता है कि प्रेमचन्द ने धनिया का नाम झिंकी रखा था जो रचना में धनिया के रूप में बदल गया।

10. क्रम संख्या 10 में दिए गए गोबर सम्बन्धी कुछ प्रसंग उपन्यास में भी हैं। गोबर बाहर से लौटता है, लेकिन रूपरेखा के समान सौम्य बनकर नहीं, शहरी बनकर लौटता है। उपन्यास में गोबर में आध्यात्मिक जागृति की कहीं चर्चा नहीं है और न वह सन्देहास्पद साधनों से धन ही एकत्र करता हुआ दिखलाया गया है। होरी की स्थिति भी मृत्यु-शैया पर पड़े व्यक्ति जैसी नहीं है।

11. क्रम संख्या 11 में भोला की कथा दी गई है। यह भी उपन्यास में दूसरे रूप में ही आई है। उपन्यास में भी भोला दूसरा विवाह करता है और उसके परिणाम भोगता है, लेकिन न तो वह होरी के साथ रहता है और न चोरी ही करता है। भोला के बेटे जंगी और उसकी युवा पत्नी नोहरी के अनैतिक सम्बन्धों को भी प्रेमचन्द ने उपन्यास में कहीं भी प्रस्तुत नहीं किया है। उपन्यास में नौखेराम और नोहरी के अवैध सम्बन्धों के एक-दो प्रसंग हैं। प्रेमचन्द ने पुत्र-विमाता के अवैध, सम्बन्धों को सम्भवतः इसलिए चित्रित नहीं किया, क्योंकि वे इतने नग्न-यथार्थवादी होना नहीं चाहते थे। रूपरेखा और उपन्यास दोनों में ही भोला पत्नी से पिटता है, लेकिन उपन्यास में उसके समाप्त होने का उल्लेख नहीं है।

12. क्रम संख्या 12 में होरी की मृत्यु का प्रसंग है। रूपरेखा में होरी लस्टग-पस्टम अपने दिन बिताता है। और अंत में उसका समय आता है और वह मर जाता है। रूपरेखा में उसके मज़दूर बनने और लू लगकर मरने का उल्लेख नहीं है। उपन्यास में गोबर द्वारा माता के माध्यम से पिता की मदद किए जाने का प्रसंग भी नहीं है। रूपरेखा में होरी की मौत पर गोबर गोदान करता है, जबकि उपन्यास में धनिया 20 आने से गोदान करती है। प्रेमचन्द ने गोबर को अनुपस्थित दिखाकर तथा उसके हाथ से गो-दान न कराकर उपन्यास को घनघोर त्रासदियों से भर दिया है। यदि गोबर के हाथ से गो-दान कराया जाता तो उपन्यास निश्चित रूप से इतनी कलात्मक ऊंचाइयों का स्पर्श नहीं कर पाता।

अंत में प्रेमचन्द ने कृषि प्रदर्शनियाँ, उन्नति, साहित्यिक आन्दोलनों, चीनी मिल, सहकारिता आदि जिन विषयों का रूपरेखा में उल्लेख किया है उनमें से अनेक छूट गए हैं। केवल चीनी मिलों का प्रसंग कुछ अंशों में चित्रित हुआ है।

निष्कर्षतः 'गोदान' की यह रूपरेखा प्रेमचन्द और 'गोदान' की सृजन-प्रक्रिया के अज्ञात रहस्यों की जानकारी प्रस्तुत करती है। इससे प्रेमचन्द की सृजन-प्रक्रिया का पुनर्मूल्यांकन हो सकेगा और गोदान की रचना-प्रक्रिया के रहस्य का भी निरावरण हो सकेगा। इस दृष्टि से गोदान की यह रूपरेखा अत्यन्त मूल्यवान एवं महत्वपूर्ण है। □

ए-98, अशोक विहार,
फेज़-प्रथम,
दिल्ली-110 052

कहानी

कटी पतंग

—रिफ़त सरोश



जनवरी की 31 तारीख को जब हैड क्लर्क के चपरासी ने पियनबुक पर हस्ताक्षर कराके उसके हाथ में कागज़ थमा दिया कि आज से आप रिटायर कर दिये गये तो उसने अपने आप को हवा में झूलता हुआ महसूस किया। यह बात नहीं कि यह हुक्म अनायास था या समय से पूर्व था। उसे ज्ञात था कि 2 जनवरी उसकी जन्म तिथि है और 58 वर्ष आयु पूरी करने के बाद महीने के अंत में उसे यह मुक्ति-पत्र मिलेगा। वह एक-एक दिन, एक-एक घड़ी गिन रहा था और हिम्मत तथा साहस के साथ इस घटना से जूझने को तैयार था। परन्तु उस समय—उस क्षण—जब यह घटना घटी तो उसने अपने आपको विवश महसूस किया, अपने आपको हवा में डोलता हुआ अनुभव किया।

एक-एक बात उसे मालूम थी। उसे मालूम था कि पत्नी की बीमारी में वह प्रोविडैंट फन्ड का बहुत सा रुपया निकाल चुका है और जो रुपया उसे मिलेगा वह इतना कम होगा कि न उससे कोई व्यापार ही कर सकेगा, न किसी बैंक में ही जमा कर सकेगा। साहूकारों के मुंह उसकी बची-खुची कमाई को हड़पने के लिये खुले हुये थे, उन लोगों ने भी तो उसे संकट के समय में कर्ज़ दिया था। और कई बार उसकी पगड़ी बाज़ार में उछलने से बचाई थी। कई वर्ष से वह यह कर रहा था कि एक जगह से कर्ज़ लेकर दूसरे का मुंह बन्द करता था, फिर कुछ दिन बाद दूसरे से कर्ज़ लेकर तीसरे के तक़ाज़ों से जान छुड़ाता था। और कुछ दिन के पश्चात् वही तीसरा उसे कर्ज़ देकर चौथे से उसकी जान छुटाता था। इस प्रकार कर्ज़ का यह चक्कर उसके जीवन-चक्र से जुड़ गया था। जैसे-जैसे रिटायरमैंट के दिन निकट आ रहे थे, वह सबको यही आश्वासन देकर कुछ और रुपया उधार ले लेता था कि प्रौविडैंट फंड और ग्रैच्युटी के रुपयों से सबका इक्कट्ठा ही भुगतान कर देगा। परन्तु अब वह सोच रहा था कि इन सबका भुगतान करने के बाद उसके पास बचेगा क्या। और अब किस भरोसे पर साहूकार उसे कर्ज़ देंगे। अब तक तो उन्हें मालूम था कि बाबूजी सरकारी नौकर हैं और कर्ज़ लेना बाबू की शान है। परन्तु बेकार होने के बाद तो कोई उसे खोटा सिक्का भी न देगा।

आज रिटायरमैंट का पहला दिन था। उसने अट्ठाईस वर्ष जमकर नौकरी की थी—इतना जमकर कि अपने स्वास्थ्य, पत्नी के सुख और बच्चों की पढ़ाई की ओर भी ध्यान नहीं दिया था। एक न दो—पूरे पांच बच्चे—सरकारी स्कूलों में पढ़-पढ़ कर अपने आप बड़े हो गये थे। उच्च शिक्षा वह किसी को न दिला सका था। नौकरी के लिये प्रतियोगिता में उसका कोई बच्चा पास न हुआ था। वे इधर-उधर भटक कर छोटी-मोटी नौकरियां कर रहे थे और घर की परवाह नहीं करते थे। बड़ा बेटा एक होटल में बैरा था जो पिता को एक भी पैसा न देता था।

कभी कभार छोटी बहिन के वास्ते एक-आध फ्राक या जूता ला

देता जो अभी छठी कक्षा में पढ़ रही थी। दूसरा लड़का मां का इतना लाडला था कि हर समय उसी की ही देख-रेख में व्यस्त रहता था। मां गत दस वर्ष से टी. बी. की रोगी थी और उसकी दवा और खाने-पीने पर आधी से ज्यादा तनख्वाह खर्च होती थी। वह अपने खाने से अधिक फल अपने लाडले बेटे को खिलाती थी। उसे सिनेमा जाने के लिये पति की चोरी से रुपये देती थी। वह मां की देख-रेख जो करता था और देख-रेख भी मामूली नहीं—उसने मां के कारण अपना स्कूल भी छोड़ दिया था। दूसरे दो बच्चे भी रेंग-रेंग कर बड़े हो गये थे और उनके पिता करमचन्द को हमेशा यह लगता था कि उसका पूरा कुनबा अपने पांव से नहीं-उसके कंधों पर चढ़कर चलता है। और आज जब उसके कंधे टूट गये थे तो उसे डर था कि कहीं ये सब धड़ाम से नीचे न आ गिरें। अब तो उसे अपने पांव तले की धरती भी खिसकती प्रतीत होती थी। उसने बचपन में केवल एक खेल शौक से खेला था-पतंगबाजी—। वह ढील का पेंच लड़ाता था। और जीवन भर ढील का पेंच लड़ाता रहा। परन्तु कहां तक ढील दी जा सकती है। अब उसकी पतंग कट गई थी और हवा में डोल रही थी।

आज से ही उसने प्रयास आरम्भ कर दिया था कि उसके फ़ंड वगैरह के रुपये उसे शीघ्र मिल जायें। परन्तु यह काम इतना सरल न था। जिन क्लर्कों ने उसके साथ काम किया था, सैकड़ों बार उससे चाय पी थी, आज वे आंख बदल कर बात कर रहे थे।

"बाबू करम चन्द जी इतनी भी क्या जल्दी है। जितनी देर में रुपया लोगे उतना ही अच्छा है। रुपये के पांव होते हैं, अपने आप खर्च हो जाता है।" एक ने चुटकी लेते हुए कहा। "अरे भई, अभी तो कुछ दिन मस्ती से घर बैठो। आपका केस लम्बा है। आपने कई बार फ़न्ड से रुपया लिया है। अब कितना लिया है, कितना वापस किया है, और कहां-कहां यह सब लिखा है-यह काम हफ्ते-दो हफ्ते का तो है नहीं। कई-कई रजिस्टरों में चैकिंग करनी है।" दूसरे ने गम्भीरता से अपनी अहमियत जतलाई, और अभी तो आपकी पैंशन के कागज़ात भिजवाने हैं। उसमें आप को कई दफ्तरों में भाग-दौड़ करनी पड़ेगी।" और आपके पास सरकारी मकान है मकान में बिजली और पानी का कनेक्शन है। आप को तो मालूम है कि आज कल आर्डर सख्त हैं। कुछ रुपया तो उस समय तक रोकना पड़ता है जब तक मकान खाली न हो जाये।" तीसरे ने उसे और निराश कर दिया।

करमचन्द अपने साथियों का मुंह तकता रह गया जो एक रात में उसे अजनबी समझने लगे थे। वह अपना सा मुंह लेकर दफ्तर से एक विवश व्यक्ति के समान निकला।

— मकान!! हां यह सरकारी मकान भी तो उसे छोड़ना था। अब वह जायेगा कहां!! उसने बीस वर्ष किराये की मद में इतना रुपया सरकार को दे दिया था जिससे एक-दो कमरे का मकान तो बन ही सकैता था। परन्तु अब बेरोजगार ही नहीं बेघर भी किया जा रहा है।

सुबह घर से निकलते समय उसकी पत्नी ने कहा था राशन, तेल, आटा, चाय, टूथपेस्ट, साबुन और दाल वगैरह लेते आना। यह सब चीज़ें गत दस वर्ष से कालोनी के जनरल स्टोर से आती थी। यह जनरल स्टोर कालोनी के बसने के साथ ही खुला था। और स्टोर क्या था—कुछ खाली खोखे और दो-चार बोरियां आटे और मिर्च-मसाले की। उसका मालिक मुकन्दी लाल साइकिल घसीटता हुआ आता था। और सब लोगों को घिघियाकर खुशामदी सलाम मारता था। उसकी दूकान बहुत बेरौनक थी। मगर उसकी खुशामद की वजह से लोग 'सैटेलाइट स्टोर' जैसे शानदार स्टोर से सामान खरीदने की जगह 'जनरल स्टोर' से ही सामान खरीदते थे। और, देखते ही देखते मुकन्दी लाल की भवें तनने लगीं थीं। कालोनी के बाबू लोग उस के क़र्ज़ के चक्कर में फंस गए थे। पहली तारीख़ को पिछले महीने का क़र्ज़ चुका देते और चालू महीने के लिए जी खोलकर खरीदारी करते। उस दिन मुकन्दी लाल के मुख पर मुस्कान फैली रहती। एक की जगह सामान के दो डिब्बे लेता और अगले महीने की पहली तारीख के लिए रुपये के बीज बोता। आज उसका जनरल स्टोर कालोनी की मार्किट की शान था। वह नियम का सच्चा आदमी था। उसे अपने सब ग्राहकों का कच्चा चिट्ठा मालूम था। वैसे दो-दो महीने चार-चार महीने हिसाब साफ न करें, तब भी मुकन्दी लाल खुश रहता था। परन्तु रिटायर्ड बाबू को एक पैसे का उधार नहीं देता था। उसने कितने ही बाबुओं को देखा था कि सीना तानकर क्वार्टर में आए और रिटायर होने के बाद गरदन झुकाए अपना सामान टैम्पों में लादकर चले गए। रिटायर्ड बाबुओं से वह दूर-दूर की मुलाकात करता था। उसका यही नियम था और इसी कारण आज तक उसका एक पैसा भी नहीं मारा गया था। करमचन्द सोच रहा था कि मुकन्दीलाल अपने नियम का पालन करता है और वह उसे इस महीने उधार नहीं देगा।—फिर, फिर...फिर वह क्या करे? उसे इस समस्या का हल सूझ गया। उसने निश्चय किया कि इस महीने का सामान किसी और जगह से नकद लेगा, और मुकन्दी लाल जब पिछले महीनों के पैसों का तकाज़ा करेगा तो यह कहकर टाल देगा कि फण्ड का रुपया मिलने पर दूंगा। और मकान...? सबसे बड़ी समस्या तो यह थी। उसके साथ के लोगों ने कोपरेटिव सोसाइटियों में मकान ले लिए थे और सरकारी मकान किराए पर उठा दिए थे, परन्तु वह...? वह कुछ भी न कर सका। एक तो उसकी दुश्मन थी—उसकी ईमानदारी। ज़रूरतमन्दों का काम देर-देर तक बैठकर करता और उनसे एक पैसा भी नहीं लेता, यह जानते हुए भी कि ज़रूरतमन्द ही रिश्वत देता है—अपना काम शीघ्र कराने के लिए। अब दफ्तर में रिश्वत भी नहीं ली तो मकान बनाने के लिए पैसा कहां से आता? तनख्वाह में तो घर चलना ही मुश्किल था।—और वास्तव में मुश्किल से घर चला। फण्ड से रुपया निकाल-निकाल कर अब तक गाड़ी घसीटी। मगर अब...???

करमचन्द विचारों के ताने-बाने बुनता बस स्टाप पर बैठा रहा। कई बसें आईं और निकल गयीं। अब वह जाये भी तो कौन सी बस में—और कहां——"! वह जिन्दगी की दो ही जगहें जानता था...घर से दफ्तर...और दफ्तर से घर। अब दफ्तर का दरवाजा तो उसके लिए बन्द हो गया और घर....! घर जाना तो है उसे परन्तु अभी नहीं, घर चलाने के लिए कुछ न कुछ सोचना है, कुछ न कुछ करना है। अब क्या उसे अपने निखट्टू लड़कों के आगे हाथ फैलाना पड़ेगा...! नहीं वह ऐसा नहीं करेगा। वह ऐसा कर ही नहीं सकता। यूं घुटने टेक देना और झुक जाना उसके मिजाज़ के खिलाफ़ है।....कई बसें आईं और निकल गयीं। आखिर 'लंच टाइम' हो गया और लोग दफ्तरों से निकल कर सड़क और मैदानों में आ गये। खोमचे वालों और छोटे-छोटे दुकानदारों के डिपों पर ठट के ठट लग गये। बहुतों ने उसका हाल-चाल पूछा और वह भी अपने मन की वेदना को छिपाकर मित्रों और जान-पहचान वालों के संग हंसता-हंसाता रहा।

वह सप्लाई के दफ्तर में एकाउन्टस सैक्शन में काम करता था और बहुत से ज़रूरतमन्दों के काम बगैर रिश्वत लिये कर दिया करता था। तब उन लोगों की आंखों में जो खुशी होती थी वही उसकी मानसिक शान्ति के लिए काफी थी।

लंच का समय समाप्त हो गया। अब छोटे-बड़े बाबू अपने अपने दफ्तरों में चले गये। करमचन्द बस स्टाप पर ही बैठा रहा। उसका एक पुराना परिचित....जिसके कई बिल उसने पास कराये थे और जो उसका प्रशंसक था...उसके निकट आया।

"बाबू करम चन्द। आप यहां कैसे। मैं तो आपके पास ही जा रहा था।"
"चरनदास जी! मैं कल रिटायर हो गया हूं। यूहीं यहां बैठा था। अब आपको मेरी सीट पर यशपाल मिलेगा।"
"यशपाल! अरे वह तो बड़ा घटिया आदमी है। झूठा लालची—हज़ार चक्कर कटवाता है।"
"अब तो आपको उसी के पास जाना पड़ेगा।"
"खैर—भुगतूंगा उसे भी। परन्तु आप यहां कैसे बैठे हैं इस समय।"
"भाई साहब अब मुझे भी आपकी तरह अपना रुपया वसूल करने के लिए हज़ार चक्कर काटने पड़ेंगे।"
"क्या ज़माना आ गया है। तो अब आप क्या कर रहे हैं।"
"बैठा हूँ।"
"आप जैसे नेक और ईमानदार आदमी को तो काम करना चाहिए"
"काम ही किया है सारी उम्र। अब चैन की बंसी बजाऊंगा।"
"चैन की बन्सी बजाने वाले यूं भरी दोपहर में बस स्टाप पर नहीं बैठे रहते। यहां से हटिये, वरना आपको यहां कोई पाकिटमार समझेगा, वैसे, लड़कियों को छेड़ने की तो आपकी उम्र नहीं।"
"अच्छा हुआ आपने मुझे चौंका दिया। मुझे इन बातों का ध्यान ही नहीं था।"

"बाबू करम चन्द जी! आपने हमेशा मेरे साथ मेहरबानी का सलूक किया है। एक मेहरबानी और कर सकते है?"

"आप शार्मिंदा करते हैं। खैर, फरमाइये।"

"मेरा काम बहुत बढ़ गया है और वसूली के लिये और दूसरे कामों के वास्ते दफ्तरों के चक्कर लगाने में मेरा समय नष्ट होता है। मुझे एक ईमानदार आदमी की जरूरत है जो दफ्तरों की ऊंच-नीच भी समझता हो और मुझे भी चूना न लगाये।"
"तो इसमें मैं क्या कर सकता हूं।"

आप मेरा यह काम संभाल लीजिये। मुझे विश्वास है कि आप मेरा एकाउंट भी संभाल लेंगे और आपको यह काम सौंप कर मैं निश्चिंत हो जाऊंगा।"

करम चन्द की समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे। उसे काम की जरूरत थी और काम मिल रहा था। परन्तु यशपाल सरीखे न जाने कितने बाबुओं से उसे जूझना पड़ेगा। और यदि इन लोगों ने टाल मटोल की तो...।

वह सोचकर बोला

"चरनदास जी मैं आपकी नौकरी करने को तैयार हूं मगर...

"बस बस—" चरनदास जी मैं आपकी नौकरी करने को तैयार हूं मगर...

"बस बस—" चरनदास ने उसका हाथ पकड़ते हुये कहा,—"मगर की बात छोड़िये। बाकी मैं संभाल लूंगा।"

"मेरा मतलब है अगर अपने आप न हुआ तो मैं किसी कीमत पर रिश्वत नहीं दूंगा। और हो सकता है मेरी इस दृढ़ता के कारण आपका काम खटाई में पड़ जाये।"

"बाबू करम चन्द जी! आपकी इसी ईमानदारी की वजह से ही तो मैं आप को अपने साथ काम करने को कह रहा हूं। वैसे तो मेरे दफ्तर में आदमियों की कमी नहीं है। आइये-आइये।" चरन दास ने करमचन्द का हाथ थाम लिया।

और करम चन्द की आंखों के सामने बीमार पत्नी का चेहरा आ गया, क़र्ज़ दिया हुआ रुपया मांगने वालों के तकाज़े उसके कानों में गूंजने लगे, उसे मुकन्दी लाल का नियम याद आ गया, और याद आ गया कि आज महीने के खर्च का सामान लेकर घर जाना है। वह खाली खाली...आंखों से इधर-उधर देखने लगा।

चरनदास ने कहा, "बाबू करमचन्द क्या सोचने लगे। सोच-विचार छोड़िये। मैं आपके भले की ही कह रहा हूं। चलिये अब।"

और करमचन्द बिना कुछ कहे चरनदास के पीछे-पीछे चल दिया। आखिर कटी पतंग को कहीं न कहीं गिरना ही था। □

डी-2 ए/डी डी ए फ्लैट्स, मुनीरका
नई दिल्ली

देश बचायें

— मोहन चन्द्र मंटन

गांधी का यह देश
यहां पर ऐसी हिंसा,
कैसे इसकी करें प्रशंसा।

आतंकों के घेरे में हम
संदेहों के डेरे में हम
कैसे इनसे बचें-बचाएं
नव आयोजन कहां रचाएं?
शांति, सुरक्षा बनी समस्या
कौन करे फल जाए तपस्या
किस दधीचि से मांग अस्थियां
बज्र बनाएं-देश बचाएं।

ए/बी-904, सरोजिनी नगर
नयी दिल्ली-110023

समुद्र : एक वक्तव्य



— राजेन्द्र प्रसाद सिंह

समुद्र में उठने वाले ज्वार
नहीं होते, नहीं होते समुद्र के समाचार!
भूकम्पकारी समुद्री तूफ़ान।

समाचारों में ढलते हैं,
करते हैं जान-माल का भारी नुकसान!

जहां ऐसा कोई तूफ़ान आता ही नहीं
और ज्वार के समय भी ज्वार
देखा जाता ही नहीं
वहां ज्वार का नहीं आना ही
समाचार बन जाता है;

क्योंकि भाटा देख-देख कर जो खुश होते हैं,
उनके उत्साह को धक्का लग जाता है
और समाचार बनाने की मशीन उन्हीं के पास है!

मगर जन-समुद्र का किस्सा है अजीब
उसके एक हिस्से में भयंकर तूफ़ान,
दूसरे भाग में ज्वार-भाटा का नज़ारा
तीसरे भाग में व्यवसाय-परिवहन की दौड़
और चौथे हिस्से में डूबे निरन्तर सोये ज्वालामुखी हैं!
समाचार बनते हैं तूफ़ान,
संघर्ष भी बढ़ाते हैं ज्वार-भाटे
परिवहन पैदा करता है प्रतियोगिता, चुनौतियां
और निरन्तर सोये ज्वालामुखी डूबे हुए, मृत-तुल्य हज़ारों वर्षों से
प्रतीक्षा कर रहे हैं
कि कब यातनाओं का नरक भोगती, जानकर अनजान बनी
सहनशील, सदापेक्षी, परिवर्तनकामी
जन-शक्ति उठ जागेगी;
निरन्तर अन्याय को मटेरती सर्वव्यापिनी तन्द्रा कब भागेगी?

पंजाबी कविता

उस समय

— हरभजन सिंह हुन्दल

अब रोते चिल्लाते हैं, सिर पीट रहे पछताते हैं
अलग होने की धमकी देते हैं
हर अक्षर की कोमल हथेली पर सुलगता कोयला धर देते हैं।
जब बोलने की बेला थी, ठीक-ग़लत जब तोलने की बेला थी
उस उसम ख़ामोश रहे क्यों?
बिखरे रहे रक्त को चुटकला जानकर गर्माते रहे महफ़िलें
एक-दूसरे को खुशी-खुशी गर्मा-गर्म ख़बरें सुनाते थे
पर्दे के पीछे जो पैठा जादूगर था तार हिलाता
उसके हाथों को न देख पाए थे
शाम-सवेरे निर्दोषों की लाल चिता पर
शीत हुए हाथों को क्यों हम ताप रहे थे?
तब बोलने का समय था
और बात पूछने वाली थी, "क्यों उल्टे राह पड़ते हो?
उकसाहट में आकर साझे आंगन में
क्यों दीवार उठा रहे हो?
अपने पैरों पर क्यों आप कुल्हाड़ी मार रहे हो?
दोस्त कौन और दुश्मन कौन सा?
किस कसौटी पर परख रहे हो?
मुंहों में चूसकी लिए हुए तुम
उसी समय खामोश रहे क्यों?
अब रोने चिल्लाने से, शोर-शराबा करने से
क्या लाभ-भला!
पुल नीचे से निकला पानी
कहां से लौटा लाएंगे
चटख चुके हृदयों को
कैसे एक-जैसा अब कर पाएंगे?

हरभजन सिंह हुन्दल,
रवि प्रकाशन, हाल बाज़ार,
अमृतसर।

रूपान्तर:
फूलचन्द मानव,
498, फेज़-6
मोहाली-चण्डीगढ़

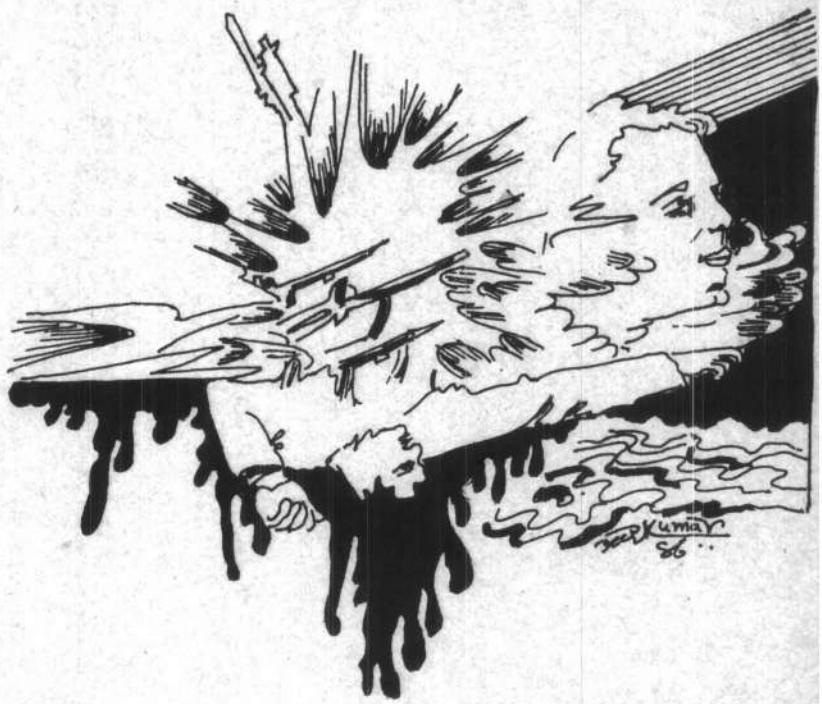
क्षणिका

दो अक्टूबर

बात है
मुश्किल से बनती
जब हम
तीन सौ चौंसठ दिन
गांधी को मारते हैं
तब एक दिन आती है
गांधी जयंती

—मिश्रीलाल जयसवाल

सागर, रास्ता दे!



अब सहा जाता नहीं वनवास
सागर, रास्ता दे!
कह रहा है राम का उपवास
सागर, रास्ता दे!

यह दुखों की मौन मरु-यात्रा
शशक – सा ढो रहा तन
और वैदेही-बिना आकुल
हिरन-सा छीजता मन
हर दिशा में छोड़ता उच्छ्वास
सागर, रास्ता दे!

निर्वसन, खारे जलाशय में
पुलिन तक खो गया है
मौन अंतर्दाह सुरसा–सा
अचानक हो गया है
विष-बुझे शर-सा हुआ वातास
सागर, रास्ता दे!

ज्वार के इस छोर से उस छोर तक
कुछ बिम्ब खंडित
सेतु की अविराम आकांक्षा लिये
पल-पल सशंकित
सौंपते कुंठित, दमित उल्लास
सागर, रास्ता दे!

सामने माया-मृगों की
वंचना बुनती हवाएं
और पीछे वृद्ध दशरथ-सी
चकित शापित ऋचाएं
त्रास का ठहरा हुआ आभास
सागर, रास्ता दे!

शूर्पनख उन्माद से आक्रांत
दंशित पंचवटियां
ऊंघते वन की शिराओं में
घुमड़ उठतीं सिसकियां
आर्ष मन के आर्त शब्द हताश
सागर, रास्ता दे!

भंग मर्यादा, कहीं हतभाग
लक्ष्मण-रेख टूटी
पांव-नीचे की धरा विध्वस्त
आश्रय-वेल छूटी
कर रहा रावण उधर उपहास
सागर, रास्ता दे!

पंख-झुलसा वृद्ध संपाती
दिशाहारा थकानें
युद्ध में घायल जटायु उदास
पथराई उड़ानें
नापने को शेष वृहदाकाश
सागर,रास्ता दे!

सूर्यवंशी अस्मिताओं को
चुनौती दे रहा तम
भूमिजा संवेदनाओं का
बिखरता, टूटता भ्रम
हो रहा आहत सहज विश्वास
सागर, रास्ता दे!

अब न जंचता और
अंधी शक्ति के आगे समर्पण
या शिलाओं पर बहाना
अश्रु-जल का मूक तर्पण
व्यग्र हैं मन में पवन उनचास
सागर, रास्ता दे!

प्रार्थनाएं क्षुब्ध, आस्थाएं थकीं
धीरज चुका है
एक सीमा से अधिक, मन राम का
अब तक झुका है
अब रचा जाये नया इतिहास
सागर, रास्ता दे!

एक सीता का नहीं, यह प्रश्न
कुछ आदर्श का है
प्रश्न यह अन्याय, अनयाचार से
संघर्ष का है
रोकना है यह विकट ख-ग्रास
सागर, रास्ता दे!

एक छाया स्वप्नगंधा जानकी
बंदी पड़ी है
आ गई सिर पर अनाहूता
परीक्षा की घड़ी है
अब कथा लेगी नया विन्यास
सागर, रास्ता दे!
कह रहा धनु पर उभरता व्यास
सागर, रास्ता दे!
अब सहन होगा नहीं अध्यास
सागर, रास्ता दे!

– योगेन्द्र दत्त शर्मा

– के. बी., 47, कविनगर
ग़ाज़ियाबाद-201002 (उ० प्र०)

चेहरा-दीवार

— नरेन्द्र मोहन

इतने सालों से इस शहर में था
ये चेहरे नहीं दिखे थे कभी
क्या चेहरे दीवार हो गये थे
जो दीवार में से कूद आए अभी।

दीवार से टिके चेहरे
चेहरों से टिकी दीवार

समझ में नहीं आता चेहरों को थामूं या दीवार को!

चेहरा कब दीवार का हिस्सा बन जाता है
और दीवार कब चेहरे में बदलने लगती है
मुश्किल है मेरे लिए फ़र्क कर पाना

देखिये, यह चेहरा मेरा देखा-भाला है
वर्षों से मेरा हमजोली
इसे देख मैं ठिठक क्यों जाता हूं
क्यों कोई भावना नहीं जगती मेरे मन में
जबकि भावना में बहता रहा हूं
उसे देख वर्षों पहले

तुम मानो न मानो
इस दीवार में या इसके पीछे ज़रूर कोई चेहरा है।

- 239-डी, एम. आई. जी. फ्लैट्स,
राजोरी गार्डन, नयी दिल्ली-110027

स्मृति गंध

— बलदेव बंशी

टहनी पर बैठा हुआ पक्षी
अभी-अभी गया है उड़कर...
देर तक हिलती हुई टहनी
उसके स्पर्श को
गुनगुना रही है

ये अश्रु नहीं—
स्वप्न झर रहे हैं उल्लास में
धरती के भीतर
पेड़ बने
बीज की सुगबुगाहट है
जो हवा में हिचकोले खा रही है

आकाश में
टहनी बनकर
स्मृति गंध लहरा रही है
जिसे पक्षी
अभी-अभी गया है छोड़कर...

ए-3/283, पश्चिम विहार,
नई दिल्ली

ग़ज़ल

— विनोद भृंग

बिगड़ी हुई जो बात है उसको संवार लें।
रो कर नहीं, ये ज़िन्दगी हंसकर गुज़ार लें।।

रोपी हैं ये जो क्यारियां श्रम के गुलाब की;
मेहनत से अपनी और इन्हें हम निखार लें।

नफ़रत से प्यार, प्यार से नफ़रत है किस लिए;
इस बात पर भी आज तनिक हम विचार लें।

सागर भले अशान्त हो, हिम्मत न हारिए;
मंझधार में जो नांव है उसको उबार लें।

जीना है देश के लिए, मरना है देश पर;
आओ शपथ ये आज, सभी बार-बार लें।

दे दी जिन्होंने जान तिरंगे की आन पर;
उन वीर शहीदों की आरती उतार लें।

अब भी छिपे हैं साँप, 'भृंग' आस्तीन में;
उन पर यक़ीन करने की आदत सुधार लें।

— 9/173, हरनाथपुरा, सहारनपुर-247001

ग़ज़ल

सदी इक्कीसवीं है आ रही!

— रघुनाथ प्रसाद 'विकल'

ज़िन्दगी ठहरी हुई, रफ़्तार दो,
नाव खोलो, चलो, पार उतार दो,
कर चुका हर युग यही अब फैसला,
मर मिटो, या तुम मरों को तार दो।
कंठ सूखा रागिनी धीमी पड़ी.
सप्त-सुर में पुनः आज संवार दो।

तंग नज़री तो कभी अच्छी नहीं,
प्यार की मुस्कान को विस्तार दो।
आस धुंधलाई, निराशा गहनतर
क्षीण ही हो, रोशनी की धार दो
गलेगा, भय का हिमालय गलेगा,
बढ़ो, बढ़ निज-शक्ति का इज़हार दो

क्यों प्रतीक्षा परसुधर उस राम की?
चेतना को स्वयं नव आकार दो।
लो सदी-इक्कीसवीं है आ रही-
स्वागतम में युगल-बाँह पसार दो। □

— 9, किदवई पुरी, पटना-800 001

गद्यकार दिनकर

राष्ट्रकवि दिनकर न केवल प्रथम कोटि के काव्यप्रणेता थे, प्रत्युत उन्होंने अत्यंत प्राणवान और भास्वर गद्य भी लिखा है। यह और बात है कि उनकी कविता की चकाचौंध में उनके गद्य का गौरव खो-सा गया है एवं अब तक उसका समुचित मूल्यांकन नहीं हो पाया। लेकिन असलियत यह है कि भविष्य को संभवतः इस बात का निर्णय करने में कठिनाई होगी कि उन्हें अधिक श्रेय उनकी कविताओं के लिए दिया जाय या गद्य-रचनाओं के लिए।

गद्य को कवियों के लिए कसौटी कहा गया है-"गद्य कवीनाम् निकषं वदन्ति"। कवि जब गद्यलेखन में प्रवृत्त होता है तो वह प्रायः गद्य में भी कविता ही करने लगता है—वही भावुकता का विस्फार, वही उपमा-रूपकों की भरमार और वही अनुप्रास की बहार। जयशंकर प्रसाद से लेकर महादेवी वर्मा तक का गद्य इसका उदाहरण है। लेकिन ये गद्य के गुण नहीं हैं। गद्य की भेदक विशेषताएँ मानी गई हैं-स्वच्छता, यथातथ्यता, और संक्षिप्तता। इस कसौटी पर बहुत कम कवियों का गद्य खरा उतरता है। दिनकर एक श्लाघनीय अपवाद हैं।

दिनकर का गद्य बहुआयामी है। उन्होंने गद्य की अनेक विधाओं को अपनी सर्जनात्मक शक्ति से सँवारा है, यथा-आलोचना, ललित निबंध, संस्मरण, यात्रावृत्तांत, डायरी, पत्र, रम्य रचना आदि। और सर्वत्र उनके लेखन पर उनके व्यक्तित्व की छाप है। उन्होंने बहुत पहले 'चक्रवाल' की भूमिका में कहा था—"मैं सौंदर्य से अधिक सुस्पष्टता का प्रेमी हूँ। कविताओं में अनुभूतियों की बारीकियाँ या ऊँचे भाव मुझे तभी जँचते हैं, जब वे अनुरूप शैली में स्वच्छता से अभिव्यक्त किए गए हों।" (पृ० 27) यह बात बहुत दूर तक उनके गद्य पर भी लागू है। दिनकर जैसा इतना सुलझा हुआ, सुस्पष्ट और प्रभावशाली गद्य लिखनेवाले बहुत कम लोग मिलेंगे। यह नहीं कि उन्होंने गद्य में उममा-रूपक या लाक्षणिकता का प्रयोग नहीं किया है। मगर इसका सहारा वे मात्र चमत्कार उत्पन्न करने के लिए नहीं, अपनी बात को ज़ोरदार और सहज संवेद्य बनाने के लिए करते हैं। एक-दो उदाहरणा अप्रासंगिक न होंगे—

(क) कला और धर्म भाई-बहन हैं। दोनों दृश्य के परे देखते हैं। दोनों की शक्ति और फालतू ज्ञान दोनों का बोझ है। (उजली आग)

(ख) स्वामी जी के समय से अभी हाल तक इस समाज (आर्यसमाज) ने सारे हिंदी प्रांत को अपने प्रचार से औंट डाला। (संस्कृति के चार अध्याय)

इस प्रकार के अनेकानेक उदाहरण दिनकर की गद्यकृतियों से अनायास एकत्र किए जा सकते हैं, जो दिनकर की प्राणवान गद्यशैली के प्रमाण हैं और जिनसे गद्य का गौरव बढ़ा है।



दिनकर का जन्म छायावाद की कुक्षि से हुआ था। उस समय साहित्य में व्यक्तिनिष्ठता और कोमल भावनाओं का बोलबाला था। लेकिन देश को पराधीनता की पीड़ा का तीव्र दंश झेलना पड़ रहा था। राजनीतिक दासता के साथ आर्थिक विपन्नता, भूख, गरीबी, बेकारी आदि से जनजीवन आक्रांत था। दिनकर को इस युगसत्य ने आकृष्ट किया और वे कल्पना का रंगीन आकाश छोड़कर यथार्थ की धूसर धरती पर उतर आए। पर चूँकि अब तक प्रेम और विरह की विवृत्ति ही साहित्य में समादृत थी, इसलिए दिनकर ने पूरे जोर से इसका खडन करते हुए कहा-"हम पूरे दायित्व के साथ कहना चाहते हैं कि पेट की पीड़ा की अनुभूति लिखनेवाले कवि से हीन नहीं है।" (मिट्टी की ओर)

इससे स्पष्ट है कि दिनकर का प्रारंभिक गद्य उनके कवि की प्रतिरक्षा में लिखा गया है। इसका तात्पर्य हुआ कि जो बात कविता में पूरी स्पष्टता और दृढ़ता के साथ नहीं कही जा सकी, उसके लिए उन्होंने गद्य का सहारा लिया। यों, दिनकर के काव्य में भी कुहासा कम, निरभ्र प्रकाश अधिक है। लेकिन गद्य में तो यह स्वच्छता दिनानुदिन बढ़ती गई। इसके लिए लेखक को वक्तृत्वकला के गुणों का अपने गद्य में समावेश करना पड़ा है और कभी सर्वथा नवीन बिंबों के द्वारा, कभी संतुलित वाक्य-विन्यास के माध्यम से और कभी शब्दों के स्थान-विपर्यय से अपने वक्तव्य को उसने अधिकाधिक प्रभावी और संप्रेषणाक्षम बनाने का प्रयास किया है। बिंबधर्मिता से पुष्ट इस प्रकार की संतुलित वाक्य-योजना दिनकर की गद्यशैली की विशेषता मानी जा सकती है, यथा "मनुष्य पहले गरीब था, तब वह हरियालियों के पास रहता था। अब वह अमीर है, मगर रेगिस्तान में बसता है।...जब दुनिया अंधेरी थी, आसमान साफ था। अब दुनिया

रोशनी से भर गई, पर आसमान पर अंधियारी छा गई।" (शुद्ध कविता की खोज) यह दिनकर के गद्य की प्रांजलता और प्राणवत्ता का ही प्रमाण है कि संस्कृति के चार अध्याय जैसी इतिहास की पुस्तक भी इतनी रोचक और सुमाठ्य बन सकी है। यों, तनिक अप्रासंगिक होने पर भी यह उल्लेखनीय है कि उक्त पुस्तक लेखक के विशद अध्ययन और उदात्त समन्वयशील दृष्टिकोण का भी दस्तावेज है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि "यदि गद्य कवियों की कसौटी है तो निबंध गद्य की कसौटी है। भाषा की पूर्णाशक्ति का विकास निबंध में ही सबसे अधिक संभव होता है।" (हि. सा. का इतिहास-पृ. 505) दिनकर के वैयक्तिक निबंध भी इसके अपवाद नहीं। इस दृष्टि से 'अर्द्धनारीश्वर' या 'वेणुवन' का सहज ही स्मरण होता है। गरचे दिनकर के अधिकतर निबंध कविता की चौहद्दी के आसपास अवस्थित हैं, पर यह तो निबंधों का स्वभाव ही है। दिनकर के बहुतेरे निबंध केवल अच्छे गद्य का स्वाद पाने के लिए पढ़े जाने योग्य हैं। उदाहरणार्थ, 'चालिस की उम्र' की ये पंक्तियाँ देखिए-

"जिसे हम मन की जवानी कहते हैं, वह उम्र को कोड़ेमार कर हांकने की कला का नाम नहीं है उम्र के साथ हमारे शरीर में जो परिवर्तन होने लगते हैं, उनका प्रसन्नतापूर्वक साथ देने के लिए दिमाग को राजी करना ही मन की असली जवानी है।" अथवा "पके हुए फल में भी एक कविता है, जो सिर्फ सूँघने की वस्तु नहीं, बल्कि रक्त में मिला लेने की चीज़ है।" (अर्धनारीश्वर-पृ. 23-24)

निबंधों की तुलना प्रायः यात्रा के दौरान मिलनेवाले शादूलों (ओयसिस) से की जाती है। दिनकर की विचार-प्रधान गद्य-यात्रा में उनके वैयक्तिक निबंध सचमुच शादूल के समान हैं, जहाँ पलभर रुक कर पाठक भाषा की हरियाली के दर्शन कर सकता है, सहृयता के निर्मल नीर का रसास्वादन कर सकता है।

इन निबंधों की ही बगलगीर पुस्तक 'उजली आग' है, जिसमें लेखक ने खलील ज़िब्रान की शैली में जीवन के निगूढ़ सत्यों को लघुकथाओं के माध्यम से उजागर करने की कोशिश की है। 'उजली आग' में चिंतन, कथात्मकता और काव्यत्व का समाहार है और इसे जिस शैली में व्यक्त किया गया है, वह सर्जनात्मक गद्य का उत्कृष्ट उदाहरण है।

डायरी साहित्य की एक सर्वथा अनौपचारिक विधा है, क्योंकि वह दूसरों को दिखाने के लिए कम, आत्मनिरीक्षण के लिए अधिक लिखी जाती है। लेकिन डायरी में चूँकि अधिक लिखने का अवकाश नहीं होता, अतएव लेखक अपनी बात कम-से-कम शब्दों में, सूत्र-शैली में कहना चाहता है। दिनकर ने डायरी भी लिखी है, गरचे, उसका एक अंश ही प्रकाशित है। इस डायरी में जहाँ अनेकत्र विचारों की मौलिकता भास्वर है, वहीं शैली की सूत्रमयता भी बरबस आकृष्ट करती है। केवल दो उदाहरण प्रस्तुत हैं–

(क) गुस्तेव उनका कवि है, जो किस्मत की नाक पकड़ कर उसे अपनी ओर घुमा लेते हैं।

(ख) मनुष्य जाति की अधिक-से-अधिक विपत्तियों का नाम व्यभिचार है।

इससे सिद्ध है कि दिनकर ने केवल पद्य ही नहीं, गद्य में भी सुभाषित कहे हैं।

इस प्रकार दिनकर का गद्य विस्तार में जितना विपुल है, प्रकार में भी उतना ही इंद्रधनुषी है। वह वैचारिकता से दीप्त और संवेदनशीलता से स्निग्ध है। उसमें सर्जनात्मकता का विशेष गुण सन्निहित है और वह दिनकर के काव्य और युग को समझने की अंतरदृष्टि प्रदान करता है। □

– डॉ० आनन्द नारायण शर्मा

माणिक शॉ चौक, बेगूसराय, बिहार

■ ■ ■

लघुकथा

कुसूर

–अतुलमोहन प्रसाद

आज, वह बहुत दिन बाद अपनी विधवा बहन से मिलने उसके ससुराल आया था, घर में प्रवेश करते ही बहन की ननद का स्वर सुनाई पड़ा–"शादी के एक साल के भीतर ही मरद को खा गई और अब आंसू बहा रही है" उसे भीतर तक कचोट गया। इसमें बहन का क्या दोष? दूसरे दिन वापस लौटते समय वह बहन को घर लेते आया। ताकि उसका मन बहल जायेगा, एक सप्ताह तक सब कुछ सामान्य रहा। एक दिन सुबह उठते ही माँ का स्वर सुनाई पड़ा–"अपन मरद को खा गई, ससुराल में गुजारा नहीं हुआ एक हफ्ते से यहाँ पड़ी-पड़ी खा रही है, हम लोगों के बाल-बच्चे नहीं हैं क्या?"

"माँ!" रुंआसे स्वर में बहन बोली।

"मत कहो अपने मुंह से हमे माँ, तुम्हारी तरह कुलच्छनी का मैं मुंह भी नहीं देखना चाहती हूँ। नृपेन क्यों लाया इसे यहाँ?"

"निर्मला मेरे साथ मेरे शहर जायेगी, वहां मेरे साथ रहेगी।"

"वह कमरे से बाहर निकलते हुए बोला।"

"भैया"-निर्मला उससे लिपट गई थी।

"मत रोओ"-उसने ढ़ाढस बंधाया-"आज से पाँच साल पहले इसकी भाभी भी तो मर गयी थी किसी ने आज तक मुझसे क्यों नहीं कहा कि मैं अपनी पत्नी को खा गया। जीजा जी के गुजर जाने में इसका क्या कसूर?" एक गहरा सन्नाटा आंगन में छा गया। □

– भारतीय स्टेट बैंक,
मधुपुर, जि० देवधर, बिहार 815353

–अतुलमोहन प्रसाद

लोक-गाथा : एक तात्त्विक विवेचन

डा० महेशचन्द्र

साहित्य जीवन की शाश्वत अभिव्यक्ति माना गया है। अनादि काल से मानव स्वयं को अभिव्यक्त करने की जो चेष्टाएँ करता रहा, उन्हीं के परिणामस्वरूप कलाओं, विशेषतः काव्य-कला का जन्म हुआ और यह काव्य "जीवन का पर्याय" माना जाने लगा। मूलतः काव्य मन की अभिव्यक्ति है, जिसका तात्पर्य यही है कि मन की रागमयी और विरागमयी अनुभूतियाँ जब कभी शब्दों में ढलती हैं, तो काव्य बन जाता है। विद्वानों ने काव्य को "लोक" का जीवंत दर्पण कहा है, जिसका सीधा-सा अर्थ यह है कि लोक ही साहित्य के माध्यम से व्यक्त हुआ करता है।

विद्वानों ने साहित्य के दो रूप स्वीकार करते हुए उन्हें जो संज्ञाएं दी हैं, वे हैं– लोक साहित्य तथा शिष्ट साहित्य।

संस्कृति हो या साहित्य, उसका मूल सम्बन्ध "लोक" से हुआ करता है। इसीलिए प्रथमतः जब साहित्य सृजित होता है, तो वह लोक साहित्य ही होता है, शिष्ट साहित्य तो कालान्तर में लिखा जाया करता है।

आज हम हिन्दी शोध ही नहीं, प्रत्युत समग्र साहित्यिक-शोध का रुझान लोकतात्त्विक आधार पर जनपदीय साहित्य के अनुशीलन की ओर पाते हैं। लोक-गाथा साहित्य की ऐसी प्रभावी विधा है, जो अभिव्यक्ति की प्रेषणीयता के साथ-साथ उसकी प्रामाणिकता को भी स्वयं में अन्तर्निहित करके चलती है।

भारत गाँवों का देश है, इसलिये उसकी अधिकांश जनता गाँवों में ही निवास करती है। यह कहना भी अत्युक्ति नहीं होगी कि शहरों में रहने पर भी भारतीय जनता का हृदय लोक तत्त्वों से परिपूर्ण रहा है। हम देखते हैं कि किसी भी देश की लोक-गाथाओं से वहाँ के लोक जीवन और संस्कृति के स्वरूप का अनुमान सरलता से किया जा सकता है। लोक-मानस अपने भावों की अभिव्यक्ति एवं कार्यसिद्धि के लिए लोक-गाथाओं को अपनाता है, जिसमें जनमानस को अन्तःचेतना की प्रेरणा देने वाले तावों का प्राधान्य होता है। इसी से मानव जीवन की प्रणालियाँ, उनके आचार-विचार, रीति-रिवाज, रीतियाँ-नीतियाँ, मनोरंजन के तत्त्व, शिक्षा एवं उपदेश की स्थिति, सामाजिक संस्कार, पशु-पक्षी से तादात्म्य भाव, प्रकृति-प्रेम, धार्मिक मान्यताएँ, व्रत-अनुष्ठान, जंत्र-मंत्र तथा अन्य विश्वास एवं लोक-जीवन के विविध तत्त्व प्राप्त होते हैं।

प्रायः यह देखा गया है कि फ़सल कट चुकने पर गाँवों में लोग सोत्साह उत्सव मनाते हैं। अवकाश के समय लोक-गीत, लोक-कथा और लोक-गाथा ही मनोरंजन का साधन होते हैं। इन लोक-कथाओं और लोक-गाथाओं को जीवित रखने का श्रेय कथक्कड़ों, गायकों, बड़े-बूढ़ों और वृद्ध व्यक्तियों को है। किसी की कमर झुकी हुई है, किसी की ज्योति क्षीण हो गई है, फिर भी वे इन लोक-गाथाओं को सुरुचि पूर्वक गाते हैं।

लोक-कथा और लोक-गाथा में अन्तर–

लोक-कथा (फॉकटेल) अंग्रेजी शब्द का समानार्थी है। कथा शब्द कहानी का पर्यायवाची है। इस दृष्टि से लोक-कथा और लोक-कहानी में कोई अन्तर नहीं होगा, किन्तु ऐसा वस्तुतः नहीं है। कथा शब्द प्रयोग में एक विशेष प्रकार की कहानी के लिये आता है।

लोक-गाथा शब्द अंग्रेजी के Ballad (बैलेड़) शब्द का समानार्थी है। लोक-गाथा में कोई कथा अवश्य होती है। लोक-गाथा मौखिक परम्परा में विकसित और लोक प्रचलित या लोकोद्भूत होती है, जबकि लोक-कथा इस प्रकार नहीं पायी जाती है।

लोक-गाथा कथात्मक गेय काव्य है, जो कि लोक कण्ठ से ही उत्पन्न और विकसित होती है तथा गीतात्मक और कथात्मक होती है। इसका प्रचार जन-साधारण में, मौखिक रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में होता रहता है। इस प्रकार लोक-गाथा में तो कथातत्व महत्वपूर्ण है ही, परन्तु इन सभी प्रणालियों में कथा के साथ-साथ अन्य तत्त्व भी रहते हैं और कहीं-कहीं ये अन्य तत्त्व कथा की अपेक्षा प्रधान हो उठते हैं, जबकि लोक-कथा में कथा-तत्त्व ही प्रधान रहता है।

लोक-गाथा प्रारम्भ में समूचे समाज की सम्पत्ति थी। सभी इन्हें गाते तथा अपनी ओर से उसमें कुछ-न-कुछ जोड़ते-घटाते थे। इस तरह एक स्थान से दूसरे स्थान में, एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में, कण्ठानुकण्ठ यात्रा करते रहने के कारण लोक-गाथाओं का रूप नित्य परिवर्तनशील होता रहा है।

लोक-कथाएँ परिवर्तनशील नहीं होती हैं। मध्यकालीन राजघरानों में तथा सामन्तों के यहाँ कथक्कड़ थे, जिनका कार्य कहानी कहना ही था। एक कहानी कई-कई दिनों तक चलती रहती थी। कथा कहना भी एक कला है। अपनी विशिष्ट शैली के कारण कथक्कड़ श्रोता के साथ एकात्म्य स्थापित कर लेता है। कथा का सौन्दर्य उसके श्रवण में ही है। कथा के मौखिक रूप में कथाकार को विस्तार की सुविधा रहती है। कथा का प्रवाह जीवन की ही भाँति अविच्छिन्न होता है।

लोक-गाथा में परम्परा, प्रेम की भावना, सहजोच्छवास, भावात्मकता और सरल कल्पना की मात्रा जितनी अधिक होती है, उतनी बौद्धिकता, कल्पना-शीलता और श्रमसाध्य कलात्मकता की नहीं होती है।

लोक-गाथा में एक महत्वपूर्ण तत्त्व पाया जाता है जो इसे लोक-कथा से अधिक मूल्यवान बनाता है। इसमें लोकप्रिय

भावनाओं का वास्तविक प्रतिबिम्ब होता है। इसके साथ ही लोक-कथाएँ, लोक-गाथाओं के आये हुए दृश्य समूहों का वर्णन हैं जहां से एक सुन्दर एवं आकर्षक घटना कहानी के रूप में चुनी जाती है।

लोक-गाथा एक लोक महाकाव्य है। इसमें महाकाव्यों से मिलने वाली चार विशेषताएँ—सक्रियता (एक्शन), चरित्र (करेक्टर), पृष्ठभूमि (सेटिंग) और कथा (थीम) में से लोक-गाथा में प्रथम पर विशेष बल रहता है। अतः गाथा के गीतों की भूमि में प्रेम के लिये विशेष स्थान रहते हुए भी, संघर्ष के लिए प्रधानता रहती है। जो वैशिष्ट्य, लोक-गाथाओं में आ जाता है, वह लोक-गीत, या लोक-कथाओं में नहीं होता है। यह भी स्वाभाविक है कि जो श्रुति मधुरता पद्य के हिस्से में आयी है, वह गद्य में सम्भव नहीं है।

गाथाओं का नामकरण भी कभी-कभी बहुत आकर्षक रहता है। कुछ गाथाएं पात्र-विशेष के नाम से भी चिह्नित की गई हैं।

लोक-कथा छंदात्मक नहीं होती है, जबकि लोक-गाथा का छन्द सीधा-सादा और सरल होता है। इसमें तुकों पर भी विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है। ये गेय होती हैं, परन्तु शास्त्रीय संगीत से भिन्न और सरल होती हैं। इनमें छोटी या बड़ी कथा अवश्य होती है।

लोक-कथाओं का प्रचार ग्रामीण तथा शहरी दोनों क्षेत्रों में पाया जाता है। लोक-कथा में कोई ऐसी वार्ता होती है, जो किसी के द्वारा कहकर सुनाई ज़ाती है और सुनाने में धार्मिक अभिप्राय होता है। उसे सुनने वालों को धार्मिक सन्तोष प्राप्त होता है और धर्म-लाभ होता है, अथवा अन्य कोई मान्यता पूरी होती है या पूरी करने के लिये सुनी जाती है। इस प्रकार का धार्मिक अभिप्राय लोक-गाथा में भी पाया जाता है। लोग कोई मन्नत करते हैं एवं उसके पूर्ण होने पर धार्मिक गाथा गवाते हैं।

लोक-कथाओं का विषय अधिकांशतः धार्मिक होता है, जो किसी-न-किसी रूप में किसी देवी-देवता के अवतार से सम्बन्धित होता है। लोक-कथाएँ विकसित होकर लोक-महाकाव्य का रूप धारण कर लेती हैं।

लोक-गाथा के विधायक तत्व

लोक-गाथा में एक दीर्घ कथा संगीत के साहचर्य से व्यक्त होती है। वृहत् कथा और संगीत संयुक्त रहते हैं। इस विधा के लिये यूरोपीय विद्वानों ने बैलेड संज्ञा का प्रयोग किया है। भारतीय-परम्परा में इसके लिये निम्नलिखित अभिधान उपलब्ध होते हैं—(1) गीत-कथा, (2) प्रबन्धगीत, तथा (3) लोक-गाथा।

यद्यपि 'गीतकथा'— पद में कथा तत्व और गेयता दोनों का ही संकेत सुस्पष्ट है, तब भी लोक साहित्य की 'गाथा' विधा के लिये उक्त संज्ञा उपयुक्त नहीं है, क्योंकि आभिजात्य साहित्य में भी लघु-कथा सम्पन्न गीत प्राप्त होते हैं और गीत संज्ञा स्वर-लय समन्वित आत्मपरक रचना के लिये रूढ़ भी हो गई है। वस्तुतः गीत-कथा संज्ञा विपरीतार्थ की बोधक है, क्योंकि गीत आत्मपरक होते हैं और कथा वस्तुपरक। अतः लोक साहित्य की गेय, दीर्घ वस्तु, सम्पन्न विधा के लिये यह संज्ञा उपयुक्त नहीं है।

द्वितीय अभिधान 'प्रबन्ध गीत' 'गीतकथा' की अपेक्षा अधिक उपयुक्त है। इसमें कथा की विशालता का संकेत है, तब भी लोक साहित्य की इस आख्यान मूलक गेय विधा में जो वर्णनबहुत लोक मानसीय प्रवृत्तियाँ रहती हैं, उनकी अभिव्यक्ति 'प्रबन्ध गीत' से नहीं होती। इसके अतिरिक्त 'प्रबन्ध गीत' नाम से आभिजात्य 'प्रबन्ध काव्य' का भ्रम होना सम्भव है, क्योंकि 'प्रबन्ध' शब्द प्रबंध काव्य के अर्थ में रूढ़ है। अतएव इस विधा के लिये कोई ऐसी संज्ञा अवश्य होनी चाहिए, जो इसमें निहित तत्त्वों की सही अभिव्यक्ति दे सके। इस सन्दर्भ में 'लोक-गाथा' अभिधान ही सर्वाधिक उपयुक्त है।

लोक-गाथा की परिभाषा

पाश्चात्य विद्वान गाम्ये ने प्रबल तर्कों के साथ ओजस्वी शब्दों में यह प्रतिपादन किया है कि लोक-वार्ता को विज्ञान का स्थान दिया जाना चाहिए। लिखित साहित्य से अलिखित साहित्य का महत्व कम नहीं है। यह अलिखित साहित्य शताब्दियों से लोक-गाथा के रूप में प्रचलित है और जन-जन की वाणी से मुखरित होता रहा है। यद्यपि यह भी लौकिक जीवन से प्रेरित हुआ है, तथापि इसमें एक ऐसी आदर्श निष्ठा है, जो समाज को शताब्दियों तक स्थिर रखने में सहायक हुई है।

भारतीय विद्वानों का ध्यान लोक-कथा, उसकी उत्पत्ति एवं विशेषताओं की ओर अभी तक नहीं गया है। कुछ विद्वानों ने भारतीय महाकाव्यों के उद्भव और विकास पर प्रकाश डालते हुए यह अवश्य कहा है कि प्रचलित कथाओं और लोक-गाथाओं के आधार पर महाकाव्यों का निर्माण हुआ है, परन्तु स्वयं लोक-गाथाओं की सृष्टि कैसे हुई, इस विषय पर अधिक विचार नहीं हुआ है। पण्डित रामनरेश त्रिपाठी ने इस विषय पर थोड़ा विचार अवश्य किया है। उनके मत में गीत-स्रष्टा स्त्री-पुरुष दोनों हैं। परन्तु ये स्त्री-पुरुष ऐसे हैं, जो कागज़ तथा कलम का प्रयोग नहीं जानते। यह सम्भव है कि एक गीत की रचना में बीसों वर्ष और सैकड़ों मस्तिष्क लगे हों। इस उद्देश्य से यह स्पष्ट होता है कि त्रिपाठी जी का विचार ग्रिम के "लोक-निर्मितवाद" के अन्तर्गत आ जाता है।

डॉ० सत्येन्द्र का मत है—लोक-वार्ता के अन्तर्गत वह समस्त अभिव्यक्ति आती है, जिसमें आदिम व्यक्ति के अवशेष आज भी दिखाई पड़ते हैं।

लोक-गाथाओं में कथात्मकता और गेयता के मूलभूत तत्व विद्यमान हैं। कतिपय विद्वानों ने मौखिक परम्परा और अज्ञात रचयिता को भी परिभाषा में सम्मिलित किया है, परन्तु हमारी दृष्टि में ये विशेषताएँ मात्र हैं। प्रकृतिभूत तत्त्व तो कथा और गेयता ही हैं। कतिपय परिभाषाओं में आख्यान के जनप्रिय होने पर भी बल दिया गया है। पर सच तो यह है कि वही लोक-गाथा काल के प्रवाह में ठहर सकती है, जिसमें लोकप्रिय कथानक हो। उक्त परिभाषाओं के सन्दर्भ में लोकगाथा का परीक्षण करने पर एक और भी तथ्य सामने आता है,—वह यह है कि लोक-गाथा ऐसे उदात्त चरित्रों को बनाती है, जो लोक-आदर्श का प्रतिनिधित्व करते हैं। कदाचित् इसीलिये जनप्रियता लोक-गाथा के जीवित रहने का प्रथम विनियोग है। चूँकि गाथाकार पढ़ा-लिखा नहीं होता, अतएव लोक-कथा साहित्यिक कृत्रिमताओं से बोझिल नहीं होती, किन्तु उक्ति का वैचित्र्य लोक-गाथा में भी उपलब्ध होता है।

हमारा विचार है कि लोक-कथाओं में चरित्र नायक के जीवन की एक घटना अवश्य होती है और कुछ में नायक का सम्पूर्ण

जीवन। लोक-कथा वही कही जानी चाहिए, जिसमें कि एक घटना अथवा पूर्ण जीवन संसिक्त हो या दोनों ही प्रकार के गेय आख्यान हों।

लोक-गाथा की विशेषताएँ

लोक-गाथा की विशेषताएँ विद्वानों द्वारा प्रतिपादित की गई हैं। इनमें कुछ लोक-गाथा की प्रकृति अथवा स्वरूपगत हैं तथा कुछ सामान्य हैं, जो लोक साहित्य मात्र में उपलब्ध होती हैं। वे निम्न हैं–

(1) संगीतात्मकता, (2) सुदीर्घ कथानक, (3) रचयिता के व्यक्तित्व-वैशिष्ठ्य का अभाव, (4) टेक-पद की पुनरावृत्ति, (5) स्थानीयता का प्रचुर पुट, (6) उपदेशात्मकता का अभाव, (7) जनभाषा का प्रयोग, (8) अनेक रूपात्मकता, (9) संदिग्ध ऐतिहासिकता, (10) अज्ञात रचयिता, (11) मौखिक परम्परा एवं लिपिबद्ध रूप, (12) सामूहिकता-बोध, (13) आभिजात्य साहित्यगत कृत्रिमताओं का अभाव (अनगढ़पन) तथा (14) धर्म निरपेक्षता।

लोक-गाथाओं का वर्गीकरण

लोक-गाथा का उद्देश्य उदात्त चरित्र द्वारा महान् आदर्श की स्थापना करना है। महाकाव्यों और प्रबन्ध काव्यों की रचना के मूल में भी यही प्रेरणा रहती है। लोक-गीत में जहाँ जीवन की लघुभाव लहरियाँ तरंगित होती हैं। वहीं लोक-गाथा में जीवन की विविधता के दर्शन होते हैं। वीर, श्रृंगार, हास्य, करुण, तथा योगकथात्मक आदि भावों का सफल चित्रिकरण लोक-गाथा में सहज और सुलभ है। इनमें जीवन का प्रत्येक पक्ष व्यक्त होता है। डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने भोजपुरी लोक-गाथाओं को तीन भागों में विभाजित किया है–

1. वीर कथात्मक लोक-गाथाएँ,
2. प्रेम कथात्मक लोक-गाथाएँ, तथा
3. रोमांच कथात्मक लोक-गाथाएँ।

इस प्रकार भोजपुरी लोक-गाथा में तीन तत्व प्राप्त होते हैं। यथा–1- वीर तत्व, 2- प्रेम तत्व तथा 3- रोमांच तत्व। लोक-गाथा पर कार्य करने वाले पाश्चात्य विद्वानों में प्रोफ़ेसर कीट्स, चाइल्ड, गूमर, होगार्ट आदि उल्लेखनीय हैं। कीट्स ने गाथाओं के दो विभाग किये हैं–

1. चारण गाथाएँ, तथा
2. परम्परागत-कथाएँ।

गूमर ने लोक-गाथा के निम्न वर्ग बनाये हैं–

1. प्राचीनतम गाथाएँ,
2. कौटुम्बिक गाथाएँ,
3. अलौकिक गाथाएँ,
4. सीमान्त गाथाएँ, तथा
5. आख्याक-गाथाएँ।

उपर्युक्त वर्गीकरण से यह स्पष्ट होता है कि लोक-मनोवृत्ति प्रायः समान दिशाओं में विविध रूप से अभिव्यक्त होती है। इन लोक-गाथाओं में शैली, विषय तथा विधान सर्वत्र समान पाये जाते हैं। इसमें जो अन्तर दिखलाई पड़ता है, वह स्थान और भाषा के कारण है। डॉ० सत्यव्रत सिन्हा ने भोजपुरी लोक-गाथाओं को चार भागों में विभाजित किया है–

1. वीरकथात्मक लोक-गाथाएँ,
2. प्रेम कथात्मक लोक-गाथाएँ,
3. रोमांच कथात्मक लोक-गाथाएँ, तथा
4. योगकथात्मक लोक गाथाएँ।

उक्त अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि लोक-साहित्य की महत्वपूर्ण विधा के रूप में 'लोक-गाथा' का अपना विशिष्ट महत्त्व है। परन्तु भारतीय लोक जीवन में 'लोक-गाथाओं' का अपना महत्त्व रहा है, जो हमें प्रायः सभी प्रदेशों के लोक साहित्य में मिलता है। उत्तर प्रदेश के पूर्वी तथा पश्चिम अंचलों में और मध्य प्रदेश के मालवा-क्षेत्र में लोक-गाथाओं का स्तर एवं लोक-प्रियता विशेष उल्लेखनीय है।

तत्व रूप में 'लोक-गाथा' का स्वरूप काव्यात्मक अधिक होने के कारण निश्चय ही 'लोक-कथा' की तुलना में अधिक स्थायी एवं प्रभावी कहा जा सकता है। □

– 9, सिविल लाइन्स
टेलीफोन एक्सचेंज के समीप, मेरठ-250001

भारतीय ज्ञानपीठ काव्य प्रतियोगिता: विनोद दास सर्वप्रथम घोषित

भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा आयोजित नयी पीढ़ी 'काव्य प्रतियोगिता' में श्री विनोद दास के काव्य-संकलन 'खिलाफ हवा से गुजरते हुए' को सर्वश्रेष्ठ करार दिया गया है। निर्णायक मंडल के सदस्य थे–सर्वश्री गिरिजा कुमार माथुर, रामानाथ अवस्थी, बिशन टंडन और बालस्वरूप राही।

31 वर्षीय युवा कवि विनोद दास उत्तर प्रदेश के हैं और उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय से अंग्रेजी में एम. ए. किया है। वह हिन्दी में भी एम. ए. है। वह एक सफल कवि होने के साथ ही निपुण कहानीकार, भेंट–वार्ताकार, आलोचक और अनुवादक भी हैं। उनकी रचनाएं हिन्दी की प्रमुख पत्र–पत्रिकाओं के साथ ही लघु पत्रिकाओं में भी प्रकाशित होती रही हैं। उन्होंने सार्त्र, काफका, किपलिंग, सोल्झेनित्सिन आदि का हिन्दी में अनुवाद किया है और हिन्दी कविताओं के अंग्रेजी अनुवाद भी किये हैं। वह मुद्राराक्षस के साथ 'बेहतर' पत्रिका का संपादन एवं प्रकाशन भी करते रहे हैं।

यह प्रतियोगिता-क्रम भारतीय ज्ञानपीठ ने युवा प्रतिभा की खोज कर उसे आगे लाने के लिए चलाया है। इस प्रतियोगिता में कोई नकद पुरस्कार न देकर विजयी प्रतियोगी की पाण्डुलिपि प्रकाशित करने का दायित्व भारतीय ज्ञानपीठ स्वीकार करता है।

विजेता कवि विनोद दास को सम्मानित करने के लिए भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा एक विशेष आयोजन किया जा रहा है, जिसमें उनके संकलन 'खिलाफ हवा से गुजरते हुए' का विमोचन भी होगा। इस अवसर पर विजेता कवि को प्रथम संस्करण की अग्रिम रायल्टी के अंश रूप में5100/- रुपये की राशि भी भेंट की जायेगी। □

मराठी कहानी

सिंदूर

■ रामनाथ चहूवाण

...मां और बेटी एक ही पति के नाम पर माथे में सिंदूर कैसे डालें? यह तेरी ऐसी रीत किस धर्म की है, जिसमें मां-बेटी का पति एक ही हो-चाहे ईश्वर ही क्यों न हो?

दासी प्रथा की शिकार एक मां के इस सवाल का हमारे समाज के पास है कोई जवाब?



दिन कब का ढल चुका था। सर्वत्र संध्या-बत्ती की तैयारियां हो रही थीं, लेकिन नरसू अभी तक घर नहीं पहुंचा था। दरवाजे की चौखट पर सिर टिकाये बैठी सई उसी की राह देख रही थी। उसका बूढ़ा बाप पास के खटोले पर पड़ा कराह रहा था। चूल्हे पर चढ़े बर्तन में पड़ा पानी कब से उबल रहा था। कोठरी के एक कोने में देवमूर्ति के समक्ष रखा माटी का दिया टिमटिमा रहा था।

सई के दिन करीब आ गये थे। गर्भ में पल रहे शिशु के कारण हो रही असहय वेदना से बेचैन होकर आंखों में आंसू भरे-भरे दांत भींचकर वह किसी तरह दरवाजे के चौखट तक पहुंची थी। उसे धीरज बंधाने या देखने वाला कोई व्यक्ति उस 'घर' में नहीं था। उसका अशक्त बूढ़ा बाप खुद कराह रहा था। लकवे की मार से उसका आधा अंग बेकार हो गया था। किसी तरह अपने दिन काट रहा था।

आधी से ज्यादा रात बीत गयी, लेकिन नरसू अभी तक नहीं आया। पेट की पीड़ा के नाते सई को किसी पल, किसी पहलू चैन नहीं मिल रहा था। देवमूर्ति के चरणों में रखा एक फूल उठाकर माथे से लगाते हुए वह बुदबुदाई–"इस यातना से मुक्ति दो प्रभु।"यह दर्द की चरमावस्था थी।

रात के उस ठंडे सन्नाटे में सई की चीख-पुकार की आवाज सारे वातावरण में गूंज उठी। सई के कई पड़ोसी अपनी-अपनी झुग्गी झोंपड़ियों में सोते-सोते हड़बड़ाकर जाग उठे। कुछ ही देर में सई को चार-छः औरतों ने आकर घेर लिया। चार व्यक्तियों ने उसके अपंग पिता को खटोले सहित उठाकर ओसारे में डाल दिया।

सुबह की लाली फूटने तक सई की समस्त पीड़ा दूर हो चुकी थी। उसकी बग़ल में लाल साड़ी के टुकड़े में लिपटा एक छोटा-सा जीव अपनी आंखें मिचमिचाता देवता की मूर्ति को एकटक ताक रहा था। सई को बिटिया हुई थी।

"प्रभु की अपार कृपा, वरना धोखा हो जाता और हम क्या कर लेतीं!"–बूढ़ी सखू वहां जुटी महिलाओं से कह रही थी। दूसरी ओर सारी औरतें देवमूर्ति के समक्ष हाथ जोड़े आस्था के साथ खड़ी थीं। पूरा उजाला होने के बाद ही सब अपने-अपने घर गयीं।

सुबह काफी धूप आ बढ़ने के बाद नरसू तेजी के साथ घर में घुसा। सई के बग़ल में फूल-सी बच्ची देखकर प्रफुल्लित हो गया। रात्रि-जागरण से सुस्त पड़ा उसका चेहरा खिल उठा। देवता के समक्ष नतशिर होकर उसने प्रणाम किया। फिर बच्ची के करीब जाकर खड़ा हो गया। सई और उस बच्ची को टकटकी लगाकर देखने लगा।

नरसू की आहट पाकर सई की पलकें हिलीं। नरसू के स्नेह का ज्वार उमड़ पड़ा, तो वह भी सई के सिरहाने बैठ गया। खूब आहिस्ते से सई के माथे पर हाथ रखा। सई ने दोनों आंखें खोल दीं। उसके कमजोर पपड़ी पड़े होठों पर धीमी-सी मुस्कान फैल

गई। "मुझे खबर मिल गयी थी।"—बड़े प्यार से सई के माथे पर हाथ फेरते हुए वह मंदस्वरों में बोला। सई की दृष्टि देवमूर्ति की ओर थी। नरसू की आंखें भर आयीं। तभी एक बूंद आंसू टपककर सई के गालों पर गिरा। फिर दोनों एक-दूसरे को जाने कब तक ताकते रहे।

बूढ़ी सखू नामक पड़ोसिन ने दोबारा सई के झोंपड़े में प्रवेश किया उसे देखते ही नरसू ने सई के माथे पर से हाथ हटा लिया था। आते ही उसने नरसू को लताड़ा। 'निश्चिंत होकर तू रात भर कहां रहा रे? ऐसा कोई करता है भला।...खैर, अब तो उठ। जा देवपूजा के लिए सामान ले आ। कुछ भोज-वोज का भी प्रबन्ध करेगा या नहीं?' इतना कहकर वह सई के पास जा बैठी। नरसू एक कोने में पड़े दो झोले उठाकर बाहर निकल गया। सई के बेटी होने के नाते वह बहुत प्रसन्न और रोमांचित था। उसके मन में भविष्य के स्वप्नों का ताना-बाना बनने लगा था—"पांच-दस वर्षों में ही लड़की का आकर्षण फूट पड़ेगा। फिर तो घर की हालत ही संवर जाएगी। उसे शुरू से ही देवदासी के काम सिखाऊंगा और खूब नाम तथा दाम कमाऊंगा।"—यही उसका निश्चय भी था।

जैसे-तैसे चार दिन बीते। पांचवे दिन पांचवीं की पूजा हुई। उसी दिन बूढ़ी सखू ने लड़की का नाम रखा—'महालसा'।...महालसा बढ़ने लगी। दिन-रात, महीने-साल बीतने लगे। उस नन्हीं बच्ची की हंसी-आवाज और किलकारियों को सुनकर सई अद्‌भुत प्रसन्नता से भर उठती थी। महालसा को कभी-कभी गोद में लेकर वह सोचती—"इसको पाठशाला में भर्ती कराके खूब पढ़ाऊंगी। अपने धंधे की छाया तक न लगने दूंगी"—यही सुख-स्वप्न उसका हार्दिक निश्चय था, लेकिन नरसू की विचारधारा से कितना विपरीत।

सई के जन्म के पूर्व ही उसके पिता ने (तब वह अपंग नहीं था) नरसू की तरह उसके बारे में तय कर लिया था और इस तरह सई को छोटी-सी उम्र में ही 'देवदासी' के रूप में देवता के समक्ष अर्पित कर दिया गया था। विवाह क्या होता है?—इसका ज्ञान होने के पहले ही उसके माथे पर देवता के नाम का 'सिंदूर' लगा दिया गया और उसका समस्त जीवन ही देवता के लिए हो गया था।

भरी जवानी में नरसू आया था उसके जीवन में। सई के साथ उसकी जोड़ी गांव भर में चर्चित हो गयी थी। सई स्वयं बहुचर्चित थी। उसके सुघड़-सौंदर्य के अलावा मीठे गले, लोचदार और लय-सुर में बंधे गले की सबमें बड़ी तारीफ थी। इतना ही नहीं, दूसरों की अपेक्षा उसके नृत्य का भी अपना विशिष्ट अंदाज था। उसके नाच पर नृत्य-प्रेमियों द्वारा रुपये-पैसों की वर्षा होने लगती। यद्यपि उसके नाच-गानों की अपेक्षा रूप-सौंदर्य के प्रेमियों की भीड़ ज्यादा जमती। इसी से गांवों के समृद्ध व धनिक किसी न किसी बहाने उसे आमंत्रित करते ही रहते। यही वजह थी कि उसकी आमदनी को देखने वाली बात कर सके, किंतु स्वयं सई कभी-कभी क्रोधित हो उठती थी—देवी-देवताओं के नाम पर रतजगा, गोंधल आदि करने वाली मंडलियों पर, जो इन आयोजनों के बहाने अपनी विकृत वासना की तृप्ति के लिए सई को लुभाने-फंसाने का यत्न किया करती थीं।

जब से सई ने देवदासी के रूप में होश संभाला था, तभी से जाने कितने अनुभवों से उसका पाला पड़ चुका था। वह सब उसकी इच्छा के विरुद्ध होता, लेकिन मन मारकर बूढ़े और अपंग पिता के लिए वह सहती। यही नहीं, सई को दूसरों से मिलने वाले धन और मान-सम्मान के चलते नरसू भी बहुत खुश था। रीति-रिवाजों के आधार पर दोनों में शादी न होने के बावजूद वह उसके साथ पति जैसे व्यवहार करता। इसी के परिणामस्वरुप महालसा का जन्म भी हुआ था।

जब महालसा की उम्र पांच वर्ष होते ही उसको सई ने पाठशाला भरती करा दिया, तो नरसू तो आग बबूला ही हो गया। एक देवदासी की लड़की और किताबें छुए, पाठशाला में पढ़े। यह बात उसके मन को किसी कोने नहीं जमती थी। इसी बात को तो लेकर उसकी आए दिन सई के साथ झड़प होने लगी। वह चाहता था कि महालसा अपनी मां की तरह नाचे-गाये, तिरछे नयनों से पुरुषों-रसिकों के हृदयों को बींधे और खूब नाम कमाए। एक दिन उसने सई से अपने मन की बात कह ही दी।—'लड़की को पाठशाला में भेजकर मेम बनाना है क्या?'

सई ने कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया। शून्य में ताकती बैठी रही। नरसू और भी बहुत कुछ बोलता रहा, परंतु वह चुप ही रही। अपने जीवन में सई ने दुनिया को अपनी ही आंखों बखूबी देखा था। रोज ही नये-नये लोगों की कुत्सित वासनात्मक दृष्टि उसके कलेजे को चीरा करती थी। समाज में उसको देवदासी के अतिरिक्त अन्य किसी रूप में सम्मान नहीं था, भले ही वह नरसू के साथ रहते हुए महालसा जैसी एक पुत्री की मां क्यों न हो गयी हो। इसी से उसने मन ही मन दृढ़ निश्चय कर लिया था कि जीते जी परिवार से इस घृणित परंपरा को समाप्त कर देना है। भीख भले मांगनी पड़े, किंतु महालसा को इस पापमय पंक में गिरने से यथासंभव रोकना है।

अंततः एक दिन उसने अपना उक्त विचार नरसू को भी बता दिया। उसकी निर्भय अभिव्यक्ति ने नरसू को क्रोधोन्मत्त कर दिया। उसने समझ लिया कि उसके जीवन में एक नासूर ने जन्म ले लिया है। सो, उसने आए दिन सई को परेशान करने में कोई कसर न रख छोड़ी। वह उस पर चरित्रहीनता तक के आरोप लगाने लगा। सवेरा होते ही उसकी बड़-बड़, चिख-चिख प्रारंभ हो जाती। खूब जोर-जोर से चीखते-चिल्लाते वह सारे गांव को भीड़ के रूप में जुटाने से भी न चूकता।

उसकी शिकायत गांव के सौ में से पचानवें लोगों को उचित लगती और वे चिढ़ते-कुढ़ते हुए सई को दोष देने लगते। नवोदित सौंदर्य का रसपान करने के विचार से वे महालसा को देवार्पित करने के लिए सई को समझाते, तो पड़ोसिनों ने तो उसके घर में आना-जाना तक बंद कर दिया था। आखिर सई ने समाज की एक कुटिल अपेक्षा की पूर्ण उपेक्षा करने की जो ठान ली थी कि देवदासी की पुत्री भी देवदासी ही बने।

ज्यों-ज्यों महालसा बड़ी होती जाती, त्यों-त्यों नरसू की छटपटाहट बढ़ती जाती थी। उसने तो अन्य देवदासियों के भी कार्यक्रमों में भाग लेना छोड़ दिया था। रोज ही रात को वह एक बोतल शराब पीकर घर लौटने लगा था। शराब खाने से निकलकर घर पहुंचने तक वह सई के मां-बाप को गालियां निकालते आता और आते ही सई पर झपट पड़ता। महालसा जब पिटती हुई मां से चिपटकर रोती या रोते-रोते चिपट पड़ती, तो नरसू उसे आइंदा से पाठशाला न जाने की ताकीद करते हुए पीटता लेकिन उसे बचाते हुए सई सिर्फ उसके भविष्य की चिंता में

'पति' की मार सहन करती। नरसू से विनती भी करती जाती-'तुम्हारी जो भी मर्जी हो, मुझसे कराओ। इन्कार करूं, तो जान ले लो, लेकिन लड़की के लिए जिद्द न करो। उसकी तो सारी जिंदगी बर्बाद हो जाएगी।'

उसके लाख रोने-गिड़गिड़ाने के बावजूद नरसू के दिमाग में उसकी मिन्नतें न घुसीं। समाज की अनिष्टकारी रूढ़ परंपरा का वह मानसिक रूप से पक्का गुलाम हो चुका था। उसी गुलामी का कंठहार वह महालसा के गले में डालने की बेसब्री से जिद्द कर रहा था। सई से मिलने वाली आमदनी को भूलकर वह सिर्फ महालसा को देवदासी के रूप में देखना चाहता था।

एक दिन हमेशा की तरह नरसू फिर शराब पीकर रात को देर से लौटा। गहरे नशे से उसके पांव डगमगा रहे थे। सई शाम को ही रोटी-सब्जी बनाकर महालसा के साथ अपने पिता के पास बैठी थी। नरसू के भयंकर रुप को देखकर भावी आशंका से स्वंय को संयत करते हुए उसने रोटियों को मोड़ कर थाली में रखा और सब्जी के साथ ही लहसुन और लाल मिर्च की तीखी चटनी भी परोस दी।

उधर नरसू था कि लाल रक्तिम आंखों से उसे घूरे जा रहा था। महालसा उसके भय से सई के पैरों में चिपटी जा रही थी। सई ने जैसे ही उसे मानपूर्वक खाना खा लेने को कहा, उसने सामने रखी थाली उसकी ओर फेंक मारी। पीतल की थाली निशाना चूक जाने से महालसा को जा लगी। वह चीख-चीख कर रोने लगी। माथे में घाव हो गया सो अलग।

अब क्या था! नरसू ने सई के मां-बाप के नाम गालियां बकना प्रारंभ कर दिया। इतना ही नहीं, उसके हाथ में आज जो कुछ आ रहा था, उसे सई की ओर फेंक-फेंक कर मारता भी जाता। फिर जब बहुत ताव आया, तो सई की गोद में पड़ी महालसा को घसीटकर एक कोठरी में बंद कर दिया। यह तो खैरियत हुई थी कि उसको सई ने पट्टी बांध दी थी।

इतना सब हो जाने के बावजूद कोई पड़ोसी वहां झांकने तक न आया। उनके लिए तो वह सब आए दिन की बात थी। सई ने महालसा को चुपचाप कोठरी से निकाला। तब तक नरसू बक-झक कर सो चुका था, लेकिन सई की आंखों में नींद न थी। बेटी को लेकर वह झोंपड़े से बाहर आ गयी। गांव के धर्मशाले में पहुंच कर एक कोने में महालसा को उसने लिटा दिया और खुद रोते-रोते रतजगा करते हुए आंखों में ही रात काट दी।

दूसरे दिन सवेरा होते ही उसने महालसा को गोद में धीरे से उठाया और सदा के लिए गांव छोड़ देने के विचार से बढ़ चली, तभी उसे अपने अपंग बूढ़े बाप की याद आई और उसके पांव वहीं थम गये। पीछे की ओर घूमकर उसने गांव की तरफ नज़र डाली, तो तेज चाल से नरसू अपनी ओर आता दिखाई दिया। सई का हृदय भय से धड़-धड़ करने लगा। कसकर महालसा को उसने अपने सीने से चिपका लिया। जरूर ही वह महालसा को छीनने के लिए आ रहा है—सोचकर वह तेजी से गांव के बाहर कदम बढ़ाने लगी।

लेकिन वह स्त्री थी और नरसू मर्द। फिर वह इस समय नशे में भी नहीं था। सो, कुछ ही देर में उस तक आ पहुंचा। सई ने भी सोच लिया था कि अब कुछ भी हो, नरसू को मुंहतोड़ जवाब देगी। वह उसकी ब्याहता थोड़े ही है। फिर कौन होता है वह उसकी जाती जिंदगी में दखल देने वाला?.....लेकिन यह क्या नरसू तो उसके निकट आकर चुपचाप खड़ा हो गया। मुंह में दही जमा ली है क्या?—सई ने सोचा, किन्तु कहा कुछ नहीं। दोनों एकटक परस्पर देखते रहे। नरसू के डर से अबोध महालसा ने सई के आंचल में मुंह छिपा लिया था। तभी नरसू ने सई की आंखों में देखते हुए उसके बाप की मौत की खबर दी।

अपंग पिता की मौत की खबर सुनकर सई का सारा अंग जैसे शिला-प्रतिमा बन गया था। विचित्र नज़रों से वह नरसू को देखने लगी, जो सिर झुकाए अभी भी खड़ा था। उसके मन में तत्काल संदेह उभरा कि पुनः उसे घर ले जाने के लिए नरसू भुलावा तो नहीं दे रहा लेकिन तभी बिना कोई अन्य शब्द बोले, नरसू उसी रास्ते घर लौट पड़ा जिस रास्ते से आया था। इस पर उसका गूढ़-गम्भीर व्यवहार सई समझ न सकी। नरसू ने न तो उसे घर लौटने को कहा था, न ही महालसा के बारे में कुछ पूछा।

तभी सई ने देखा—नरसू दस कदम तक जाकर थम गया था। फिर पीछे मुड़कर उसकी ओर देखा, तो पाया कि सई जहां की तहां खड़ी थी। पलटकर वह सई तक आया और करुण स्वर में बोला 'भगवान की सौगंध सई! तुम्हारे बूढ़े बाप की मृत्यु रात तुम दोनों के जाने के कुछ ही देर बाद हो गई थी शायद। शव अभी भी तुम्हारे ही आसरे दरवाजे के सामने रखा है।'

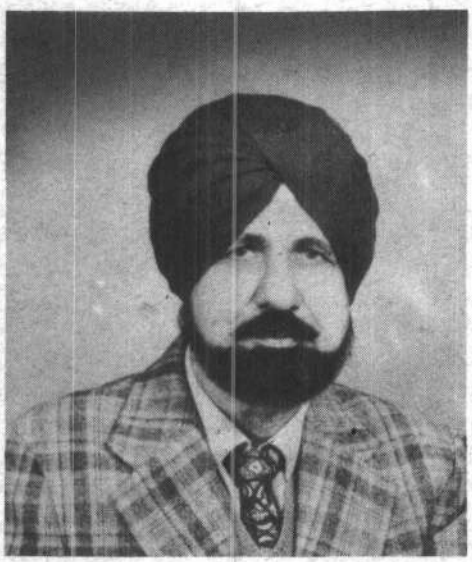
नरसू इस बार ईश्वर की सौगंध खाकर बोला था। मां की सौगंध खाता, तो शायद वह यकीन न करती, लेकिन अब अविश्वास का प्रश्न ही कहां उठता था। दहाड़ मारकर 'बापू' कहकर रोने लगी। नरसू ने जीवन की निस्सारता की बातें दार्शनिक अंदाज में समझाते हुए उसे सांत्वना दी और समझाते-बुझाते घर तक पहुंच गया।

सचमुच बूढ़े का शव धोती से ढ़ककर दरवाजे पर ही रखा था। पड़ोसी जन और गांव के कुछ अन्य बड़े-बूढ़े भी उसके आसपास बैठे खड़े बतिया रहे थे। शांत मन से सई ने पिता के शव को अंतिम प्रणाम किया। फिर खड़ी होते-होते सहसा मूर्च्छित हो गयी। समीप की दो-तीन औरतों ने उसके मुख पर पानी की छींटे मारे और समझाते-बुझाते हुए उसे शांत किया। कुछ ही देर बाद शव को लोग अंतिम संस्कार हेतु लेकर चल दिये। नरसू भी उन सबके साथ था।

इसके दो दिन बाद की बात है। सई अपनी बेटी महालसा को गोद में लिये हुए चिंताग्रस्त मुद्रा में बैठी हुई थी। सिर पर काला पटका बांधे नरसू भी वहीं अपने घुटनों पर हथेलियां और हथेलियों पर सिर टिकाए वहीं शांतचित्त बैठा था। बूढ़ी सखू सई को बार-बार समझा रही थी—'नरसू का कहा मानो सई, महालसा को भी देवता के नाम का सिंदूर लगा ही दो। तुम लोगों के सारे दुख-दर्द, सारे दलिद्दर दूर हो जाएंगे।' उधर बेचारी महालसा मासूम नज़रो से सई का मुख ताक रही थी। इसके बावजूद उस नादान को अपनी मां के अंतर्मन में हो रहा हाहाकार नहीं सुनाई दिखाई पड़ रहा था; जो बार-बार एक ही बात सोच रही थी कि कैसे वे सोना जैसी इस लड़की का जीवन नष्ट होने से बचाए। इसके बावजूद उसे कोई रास्ता न सूझ रहा था।

(शेष पृष्ठ 30 पर)

उपन्यासकार बलवन्त सिंह



— तिलकराज गोस्वामी

सुप्रसिद्ध उपन्यासकार-कहानीकार बलवन्त सिंह का देहावसान साहित्य-जगत के लिए एक अपूरणीय क्षति है। 27 मई 86 को रात्रि 9 बजे इलाहाबाद स्थित प्रीति नर्सिंग होम में जहां उनका इलाज चल रहा था वहां उन्होंने अंतिम सांस ली। वे गत चार वर्षों से आंत के फोड़े के रोग से गम्भीर रूप से बीमार पड़े थे। बलवन्त सिंह पांच-सात वर्ष पहले तक पूरी तरह स्वस्थ थे और उनका व्यक्तित्व देखते ही बनता था। तब उनका वजन लगभग अस्सी किलोग्राम था। पर जीवन के अंतिम दिनों में वे पैंतिस-चालीस किलोग्राम के ठठरी मात्र रह गये थे।

बलवन्त सिंह ने हिन्दी साहित्य को लगभग बीस उपन्यास और चार सौ से अधिक कहानियां दी हैं। वैसे तो उन्होंने अनेक विषयों को अपनी रचनाओं का आधार बनाकर लिखा है किन्तु अपनी अधिकांश रचनाओं में उन्होंने पंजाब की संस्कृति, वहां के रीति-रिवाज पंजाबी स्वभाव तथा विशेष रूप से पंजाब के ग्रामीण जीवन को चित्रित करने का सफल प्रयास किया है। उनकी कई कहानियों के अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद छपे हैं। श्री उपेन्द्रनाथ अश्क के शब्दों में कोई अतिश्योक्ति नहीं जब वे कहते हैं कि "बलवन्त सिंह कभी-कभी और कहीं-कहीं अपने समकालीनों में बड़ा नज़र आता है। इसे अतिश्योक्ति न माना जाए तो मैं यह कहने का साहस कर सकता हूं कि इस उपमहाद्वीप भारत-पाकिस्तान में यदि पांच-सात ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने बलवन्त सिंह के सम्पूर्ण साहित्य का पूरी लगन व गहराई से अध्ययन किया है तो उन पांच-सात व्यक्तियों में मैं अवश्य आता हूं। अपने इस अध्ययन के आधार पर मैं कह सकता हूं कि बलवन्त सिंह केवल हिन्दी-उर्दू के ही नहीं वरन विश्वस्तर के उपन्यासकार हैं। उनके पास गहरी मानवीय संवेदना है, जिन्दगी के तरह-तरह के अनुभव हैं, वातावरण को परखने की पैनी दृष्टि है तथा अपने शिल्प की अत्यन्त सहजता से वे पाठकों के मन-प्राणों पर अंकित हो जाने की क्षमता रखते हैं।

बलवन्त सिंह का जन्म जिला गुजरांवाला (अब पाकिस्तान) के एक छोटे से गांव चक बहलोल में सन् 1924 में हुआ। उनके पिता जी अध्यापक थे। उन्हीं की प्रेरणा से बलवन्त सिंह ने चौदह-पंद्रह वर्ष की अवस्था में ही छोटी-छोटी कहानियां लिखनी शुरू कर दी। उनकी मातृभाषा पंजाबी थी किन्तु प्रारम्भिक शिक्षा उर्दू के माध्यम से हुई। अतः उनका लेखन उर्दू में ही शुरू हुआ। उनकी प्रथम उर्दू कहानी 'सज़ा' थी जो उस काल की सुपरिचित साहित्यिक पत्रिका 'साकी' में प्रकाशित हुई। इस पहली कहानी ने ही उन्हें उर्दू साहित्य में स्थान दे दिया। साहित्यिक पत्रों में इस कहानी की खूब चर्चा हुई। यों तो आंचलिकता का प्रवेश उपन्यासों में बहुत पहले हो चुका था पर शुद्ध रूप में आंचलिक प्रवृत्तियों को आधार बनाकर उपन्यास, बलवन्त सिंह ने ही लिखा। सन् 1949 में उनका चर्चित उपन्यास 'रात चोर और चांद' प्रकाशित हुआ। कतिपय आलोचकों ने इस उपन्यास को हिन्दी का पहला आंचलिक उपन्यास माना है। इस उपन्यास में पंजाब के मध्यवर्गीय ग्रामीण जीवन की यथार्थ झांकी प्रस्तुत की गयी है। अपनी अन्य कृतियों में भी बलवन्त सिंह ने पंजाब के गांवों का वास्तविक चित्रण किया है। वहां की संस्कृति, जन-जीवन, परम्पराएं, रूढ़ियां तथा परिवर्तन की नवीन दिशाएं—इन सबका बहुत निकट से उनका परिचय रहा है। यही कारण है कि उनकी प्रस्तुति बड़ी सहज व स्वाभाविक प्रतीत होती है। उन्होंने अपने पात्रों का चयन भी जीवन के यथार्थ से किया है और उन पर कहीं भी अपना आदर्शवाद अथवा अपनी विचारधारा आरोपित नहीं की है। यही कारण है कि उनके पात्र अंत तक स्वाभाविक एवं यथार्थ ही बने रहते हैं। उनका चारित्रिक विकास सहज गति से होता है, यांत्रिक रूप से नहीं। आंचलिक वातावरण लेते हुये भी आंचलिक शब्दों से पूरी तरह बचने की कोशिश की है। आंचलिक उपन्यास लिखते समय भाषा के मामले में बलवन्त सिंह ने टामस हार्डी को अपने सामने रखा है। और इस मामले में वे बड़ी सीमा तक सफल रहे हैं। बलवन्त सिंह भली-भांति जानते थे कि आंचलिक शब्दावली उस अचंल विशेष तथा उसके आसपास के क्षेत्रों के लोगों का भले ही अच्छी व मोहक लगती हो पर दूरस्थ रहने वाले पाठकों को वे शब्द बोझिल प्रतीत होते हैं। अतः उन्होंने खड़ी बोली का ही प्रयोग किया है। पात्रों के अनुसार वे कहीं-कहीं उर्दू शब्दों का इस्तेमाल भी करते हैं। इस तरह भाषा के क्षेत्र में उनकी तुलना प्रेमचन्द से की जा सकती है। भाषा के साथ शिल्प के चुनाव में भी बलवन्त सिंह ने प्रर्याप्त कलात्मक कौशल का परिचय दिया है।

बलवन्त सिंह एक सशक्त चित्रकार की तरह गांवों के दृश्य हमारे सामने प्रस्तुत करता है। उसके द्वारा प्रस्तुत गांव के अनूठे चित्र हमारे मानस-पटल पर किसी फिल्म की भांति उभरने लगते हैं। बलवन्त सिंह ने गांव के कितने मोहक चित्र प्रस्तुत किये हैं उसका एक उदाहरण देखें-"कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी और हर ओर धुन्ध छायी हुई थी। कच्ची ईंटों व गारे के बने हुये

मकानोवाले गांव के बाहर भंगियों के कुंए के समीप धरेक के दो-तीन वृक्ष बिल्कुल स्थिर खड़े थे। उनकी घनी पत्तियों और शाखाओं में से मानों धुन्ध बहुत धीरे-धीरे बह-बह कर बाहर को आ रही थी। वृक्षों के इस समूह से कुछ दूरी पर कब्रिस्तान के समीप से होकर आने वाले चौड़े कच्चे मार्ग पर कुछ प्रतिबिम्ब गांव की ओर आते दिखाई दिये। गांव वाले अपने-अपने घरों के भीतर अंगीठियों में सूखे उपले दहकाये हाथ-पांव सेंक रहे थे। अगर कोई व्यक्ति बाहर खड़ा होता तो उसे गांव की ओर बढ़ने वाली परछाइयां भूत-प्रेत ही प्रतीत होतीं। सर्दी इतनी तीक्ष्ण थी कि वृक्षों के समूह के नीचे दाने भूनने वाली भट्टी के भीतर घुसे कुत्ते भी अपनी थूथनियां टांगों में छुपाये चुपचाप पड़े थे। यहां तक कि उन परछाइयों को आते देखकर उन पर भौंकने की भी उन्हें इच्छा नहीं हुई" (उपन्यास—'चक पीरां का जस्सा' से)

क्या लेखन उनके लिए सामाजिक दायित्व है या महज़ शौक इसके उत्तर में बलवन्त सिंह ने कहा था—"मैं स्वयं को समाज-सुधारक नहीं मानता। अपने परिवेश की जो बातें व घटनाएं मुझे प्रभावित करती हैं उन्हें मैं अपनी रचनाओं का जामा पहना देता हूं। अपनी रचनाओं द्वारा मैं सामाजिक यथार्थ, व्यवस्था की विसंगातियां, विविध वर्गों की मानसिकता तथा आदमी की मूल प्रवृत्तियों को उजागर करने का प्रयास करता हूं। राजनीति, सैक्स, रोमांस व प्राकृतिक दृश्य आदि विषयों को मैंने यथा अवसर अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है। मुझे लगता है कि एक चित्रकार की तरह मैं समाज के अनेक चित्र अपनी कहानियों में पेश करता हूं। यह सामाजिक चित्र किसी न किसी रूप में अवश्य ही समाज को प्रभावित करते हैं और उसकी मानसिकता में परिवर्तन लाने में सहायक हो सकते हैं। मुझे पांच दरियाओं की भूमि पंजाब, वहां के निवासियों की विशेषताओं, उनकी परम्पराओं व पर्वों-त्यौहारों से बेहद लगाव रहा है और यह लगाव ही किसी न किसी रूप में मेरी कहानियों में प्रकट हुआ है।"

मेरे साथ हुई बातचीत के दौरान साहित्यिक आंदोलनों तथा प्रतिबद्धता के बारे में अपने विचार उन्होंने इन शब्दों में व्यक्त किये थे—"मैं समझता हूं कि साहित्यिक आंदोलनों से भी साहित्य का लाभ होता है। इन आंदोलनों से जुड़कर जब लेखक लिखते हैं तो उनमें एक प्रकार की अच्छा लिखने की होड़ होती है। इस हारमोनियस कम्पीटीशन (सुखद प्रतियोगिता) से अच्छी-अच्छी रचनाएं सामने आती हैं। कभी-कभी इन आंदोलनों से गुटबाजी भी पनपती है ज़िससे साहित्य का अहित होने का अन्देशा भी रहता है। जहां तक प्रतिबद्धता का प्रश्न है तो मेरे विचार में यदि कोई लेखक किसी वाद विशेष से जुड़कर अपना लेखन करता है तो उसमें भी कोई हर्ज नहीं। संसार के कई रचनाकारों ने वाद विशेष से प्रतिबद्ध होकर लिखा है और उनकी कृतियां साहित्यिक मापदंडों के आधार पर उत्कृष्ट मानी गयी हैं। लेकिन जहां तक मेरा अपना प्रश्न है मैंने स्वयं को कभी किसी कठोर नियम, किसी वाद या किसी ऊंचे सिद्धान्त से नहीं जोड़ा। किसी परम्परा, वाद अथवा उद्देश्य से असम्पृक्त जीवन के जिन पहलुओं ने मुझे प्रभावित किया, मैंने उसी को विषय बनाकर कहानियां लिखीं।"

बलवन्त सिंह को पढ़ने का बहुत शौक था। अध्ययन को वे अपना पहला प्यार मानते थे और लेखन को दूसरा। उन्होंने विविध विषयों पर हज़ारों पुस्तकें पढ़ी थीं। साहित्य, इतिहास, धर्म व दर्शन लगभग सभी विषयों में उनकी रुचि थी। प्रायः वे आर. एल. स्टीवेन्सन के इस कथन का उल्लेख करते थे कि पुस्तकों का अपना महत्व होता है पर पुस्तकें जीवन का स्थान नहीं ले सकतीं। सही लेखन के लिए तो पुस्तकों की अपेक्षा जीवन का खुली आंखों से अध्ययन अति आवश्यक होता है।

पंजाब के ग्रामीण जीवन का जैसा जीवन्त चित्रण बलवन्त सिंह के कथा-साहित्य में मिलता है, वह अप्रतिम है। उर्दू साहित्य में तो वे पूरी तरह स्थापित हैं किन्तु हिन्दी में उनके रचनात्मक योगदान का अभी समुचित मूल्यांकन नहीं हुआ है, पर उनकी कथा-कृतियां समकालीन कथा-साहित्य में निश्चय ही विशेष महत्व रखती हैं। बलवन्त सिंह के दो उपन्यास 'एक मामूली लड़की' तथा 'चक पीरां का जस्सा' उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत हो चुके हैं। साहित्यिक योगदान के लिए वे पंजाब सरकार से 5100 रुपये का पुरस्कार तथा 'शिरोमणि साहित्यकार' की उपाधि भी प्राप्त कर चुके हैं। 'चक पीरां' का जस्सा, 'दो अकालगढ़', 'रावी पार', 'रात चोर और चांद', 'राका की मंजिल', 'साहिबे आलम', 'सूना आसमान', 'हिन्दुस्तान हमारा', 'तारोपोद', 'जग्गा' तथा 'किस्सा चार दरवेश' इत्यादि बलवन्त सिंह की महत्वपूर्ण कृतियां हैं। □

91 सी/8 सी, सर्वोदय नगर, अल्लापुर,
इलाहाबाद-6 (उ. प्र.)

(पृष्ठ 28 का शेष)

धधकते हृदय से सई कोठरी के कोने में अवस्थित देवमूर्ति की ओर लंबी सांसें भरती टकटकी लगाये आंसू टपका रही थी—निःशब्द। मानो वह अपने पत्थर के देव से पूछ रही थी मन ही मन—प्रभु! तू तो तीनों लोक का स्वामी है। विवाह के अर्थ का बोध होने के पूर्व ही मेरे मां-बाप ने तेरे नाम का सिंदूर लगा दिया। तभी से जाने-अनजाने मैंने तुझे अपने जीवन में पति का स्थान दिया। तेरे ही नाम पर मैंने अपना जीवन चलाया। तेरा ही नाम ले-लेकर तेरे भक्तों का मनोरंजन किया। घुंघरू और तबले की झंकार पर अपनी जवानी और जिंदगी भाड़ में झोंक दी।

'कितनी विचित्र बात है कि मैं तेरी पत्नी-देवदासी हूं, लेकिन मुझ पर और मेरे शरीर पर स्वामित्व तेरे भक्तों का हुआ; लेकिन आज तो मैं एक सुंदर बेटी की मां हूं। उसको भी इस देवदासी-परंपरा के कालचक्र में फंसाकर इस ढोंगी और दिखावटी समाज की वासना पर बलि कैसे चढ़ा दूं?.....फिर तू ही बता दे कि महालसा को मैं अपना सिंदूर कैसे लगा दूं? मां और बेटी एक ही पति के नाम पर माथे में सिंदूर कैसे डालें? क्या यह मेरी बेटी, तेरी भी बेटी नहीं है?...फिर यह तेरी ऐसी रीत किस धर्म की है, जिसमें मां-बेटी का पति एक ही हो—चाहे ईश्वर ही क्यों न हो? तुम बोलते क्यों नहीं प्रभु, उत्तर दो, मेरी बात का उत्तर दो। मुझे रास्ता तो दिखाओ प्रभु! क्या एक ही पति के नाम से मां और बेटी दोनों को सिंदूर लगाना जायज होगा?'

■ ■ ■

— अनुवाद: बलदेव प्रसाद
द्वारा श्रीकृष्ण गोपाल श्रीवास्तव, 233-बी, चरनलाल चौक,
राज टेलर्स के समीप, गोरखपुर-273001

गंगा निर्मलीकरण अभियान जो जनान्दोलन है

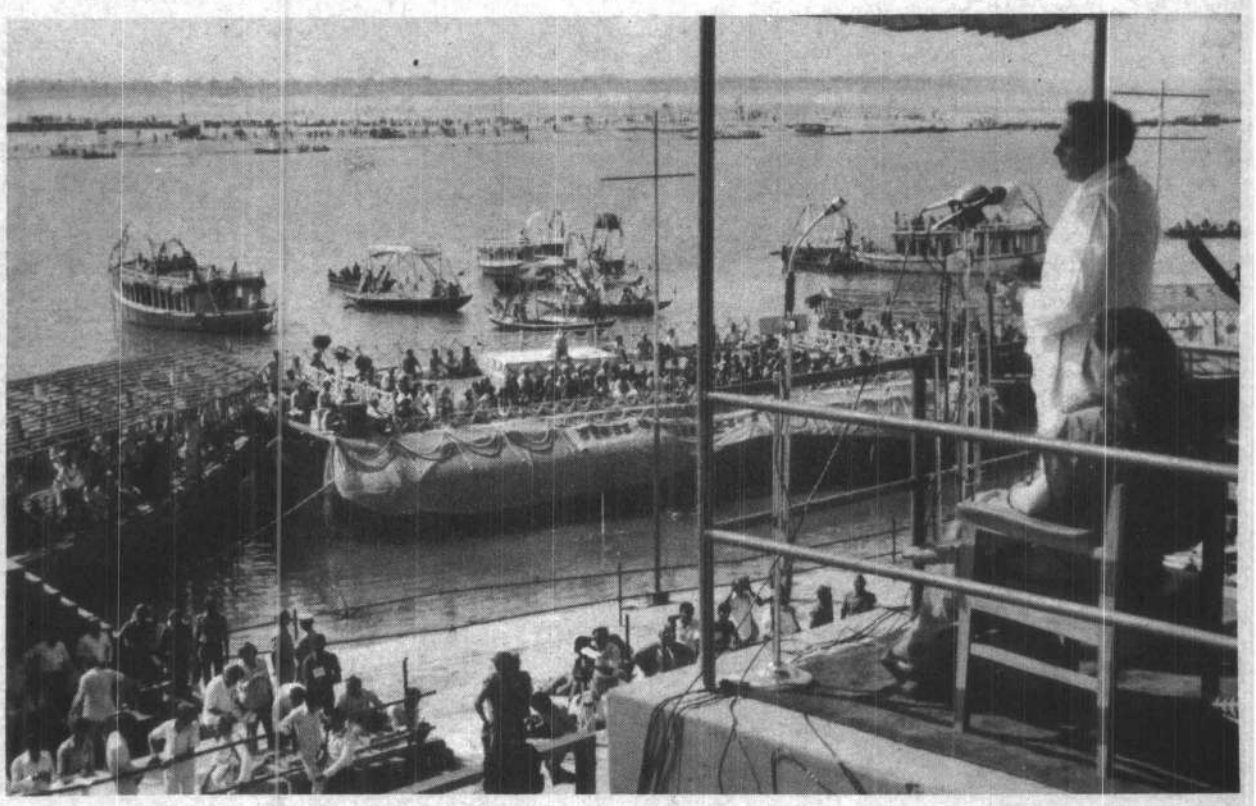
■ डा० राममोहन पाठक

गंगाजल जनविश्वास के अनुरूप अत्यन्त पवित्र और शुद्ध होते हुए भी वैज्ञानिक दृष्टि से दूषित हो चुका है। उसे प्रदूषण मुक्त करने के लिए लगभग 210 करोड़ रुपये की योजना तैयार की गयी है। प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी का यह विश्वास है कि आने वाले पांच सालों में गंगा प्रदूषण-मुक्त हो जायेगी और इस विश्वास का सुदृढ़ आधार है जन सहयोग। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि इस योजना का स्वागत करते हुए सभी वर्गों के लोग इस पुनीत कार्य में अपना पूर्ण सहयोग प्रदान कर रहे हैं।

हमारे पहले प्रधानमंत्री स्वर्गीय श्री जावहरलाल नेहरू की पुस्तक 'डिस्कवरी आफ इण्डिया' में लिखा है-"भारत की सभी नदियों में गंगा श्रेष्ठतम है, जो भारत के हृदय से बहती है। अपने किनारे-किनारे रहनेवाले करोड़ों लोगों को यह जीवनदान देती है। गंगा, गंगोत्री से लेकर महासागर में विलीन होने तक, पुराने समय से लेकर आज तक भारतीय संस्कृति और सभ्यता की जीती-जागती तस्वीर प्रस्तुत करती है।" नेहरू जी का यह विश्वास आज जन-जन का विश्वास बन चुका है। उन्होंने कहा है- "गंगा तो विशेषकर भारत की नदी है, जनता की प्रिय है, जिससे लिपटी हुई है भारत की जातीय स्मृतियां, उसकी आशायें और उसके भय, उसके विजयगान, उसकी विजय और पराजय। गंगा तो प्राचीन सभ्यता का प्रतीक रही है सदा बदलती, सदा बहती, फिर वही गंगा की गंगा। यही गंगा मेरे लिए निशानी है भारत की प्राचीनता की यादगार की, जो बहती आई है वर्तमान तक और बहती चली जा रही है भविष्य के महासागर की ओर।"

अगले चार वर्षों में गंगाजल के शुद्धिकरण के इस महत्वपूर्ण कार्यक्रम को लागू करने पर हरिद्वार और वाराणसी के आलावा कानपुर, इलाहाबाद, मिर्जापुर और फर्रुखाबाद में 116 करोड़ 30 लाख रुपये व्यय किये जायेंगे। इन सभी कार्यक्रमों को पूरा करने के लिए इस पंचवर्षीय योजना के बाद भी, अतिरिक्त कार्य के लिए उत्तर प्रदेश सरकार को भारत सरकार से सहायता मिलने की आशा है। राज्य सरकार द्वारा तैयार की गई योजनायें लगभग 209 करोड़ रुपये की है।

वाराणसी में गंगा निर्मलीकरण अभियान का शुभारंभ करने के बाद सभा को संबोधित करते हुए प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी।



प्राधिकरण का आकलन

प्रदूषण रोकने के लिए हाल में ही गठित केन्द्रीय गंगा प्राधिकरण के आकलन के अनुसार सन् 1990 तक गंगा को प्रदूषण मुक्त करने के कार्य पर 250 करोड़ रुपये खर्च होंगे, जिस पर गंगा तट पर बसे 29 जिलों में कार्यारम्भ हो चुका है। 100 जिलों की 80 प्रतिशत जनसंख्या, लगभग ढाई हजार किलोमीटर लम्बी गंगा की धारा को गंगोत्री से गंगा सागर तक तीन भागों में बांटा गया है। प्राधिकरण की रिपोर्ट के अनुसार गंगोत्री से ऋषिकेश तक 'ए' श्रेणी का जल है जो पीने योग्य है। ऋषिकेश से कन्नौज तक 'बी' श्रेणी का है जो केवल नहाने लायक है। इसी प्रकार यह जल बिहार में पटना तक है, इसके आगे जल इतना प्रदूषित है कि न तो पीने योग्य है और न नहाने योग्य। यहां तक कि अब गंगा का यह जल खेती के लायक भी नहीं रह गया है।

गतवर्ष 16 फरवरी को प्रधानमंत्री राजीव गांधी की विशेष पहल पर केन्द्रीय गंगा प्राधिकरण का गठन किया गया, जिसके अध्यक्ष प्रधानमंत्री स्वयं हैं। प्राधिकरण ने प्रदूषण रोकने का कार्य तेजी से प्रारंभ कर दिया है। हरिद्वार में यह कार्य लगभग पूरा हो चला है। गंगा के तट पर एक लाख से अधिक जनसंख्या वाले 29 नगर, पचास हजार से एक लाख की जनसंख्या वाले 23 नगर और पचास हजार से कम आबादी वाले 40 नगर स्थित हैं। इन सभी नगरों के गन्दे नालों, कूड़े-कचरों और औद्योगिक अवशेष के रूप में निकलने वाले रासायनिक पदार्थों से गंगा प्रदूषित होती जा रही है।

योजना के अनुसार सबसे पहले गंगातट पर स्थित एक लाख से अधिक जनसंख्या वाले 29 नगरों में गंगा प्रदूषण निवारण कार्य आरम्भ किया गया है। इन नगरों में उत्तर प्रदेश के सात नगर ऋषिकेश, हरिद्वार, फर्रुखाबाद, कानपुर, इलाहाबाद, मिर्जापुर और वाराणसी हैं। ऋषिकेश में जुलाई, 1985 में गंगा को प्रदूषण-मुक्त करने का काम आरम्भ हुआ था। वहां का पानी प्रदूषण-मुक्त हो गया है। सन् 1988 में इलाहाबाद में समाप्त होने वाले कुम्भ तक गंगा से 60 प्रतिशत तक प्रदूषण समाप्त कर देने का अनुमान था। इस पूरे कार्य पर अनुमानतः 2 करोड़ 10 लाख रुपये व्यय होने का अनुमान है।

चमड़ा उद्योग की वजह से कानपुर में गंगा प्रदूषण की समस्या विकराल रूप में है। कानपुर में प्रदूषण रोकने के प्रथम चरण पर सवा तीन करोड़ रुपये व्यय होने का अनुमान है। गंगा को स्वच्छ बनाने के लिए केन्द्रीय सरकार ने 2 करोड़ 92 लाख रुपये की मंजूरी दी है। फिलहाल सातवीं योजना के अन्तर्गत 2 करोड़ 40 लाख रुपये खर्च होंगे। गंगातट पर कुल 132 प्रमुख उद्योग हैं जिनमें 86 तो अकेले कानपुर में ही हैं। उत्तर प्रदेश में कानपुर का चमड़ा उद्योग खतरनाक प्रदूषण उत्पन्न कर रहा है। क्रीमियम राक्सिस नामक रासायनिक पदार्थ इस में से निकलता है जो हल्का ज़हर है।

अभियान का शुभारम्भ

प्रधानमन्त्री श्री राजीव ने गांधी गंगा प्रदूषण मुक्ति अभियान का शुभारम्भ वाराणसी से किया। इसका बहुत बड़ा महत्व है। वाराणसी सदियों से धर्म और संस्कृति के केन्द्र के रूप में विश्वविख्यात रही है। इस ख्याति का सर्वाधिक श्रेय काशी की उत्तरवाहिनी गंगा को है। धार्मिक भावना और पर्यटन की दृष्टि से यहाँ प्रति दिन हजारों देशी-विदेशी लोग काशी आते रहते हैं। काशी में गंगा प्रदूषण की समस्या का मुख्य कारण गंगा में पूरे नगर के सीवर का मिलना, शवदाह और गंगा की धारा में गंदगी का अनवरत रूप से मिलते जाना है। इन सभी समस्याओं के हल के लिए केन्द्र एवं प्रान्तीय सरकारों के विशेष सहयोग से नयी-नयी योजनाएं प्रारम्भ की गयी हैं। पूरे नगर की सीवर की गन्दगी को गंगा तट पर बने पम्पों के जरिये कृषि कार्य के लिए उपयोगी जल के रूप में खेतों तक पहुंचाने की योजना कार्यान्वित की जा रही है, जिससे शहर का सीवर गंगा में मिलाना लगभग बन्द हो जायेगा। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय और डीज़ल रेल कारखाने की गन्दगी को भी गंगा में मिलने से रोकने की व्यवस्था अन्तिम चरण में है। वाराणसी में शवदाह के बाद अधजले शवों का प्रवाह, मृत लोगों के शवों का गंगा में प्रवाह रोकने तथा श्मशान की गन्दगी को गंगा में डालने से रोकने के जो प्रयास किये गये हैं। उनके परिणाम अच्छे रहे हैं। गंगा तट पर होनेवाली अन्य प्रकार की गन्दगी को भी रोकने के लिए भरपूर प्रयास किये जा रहे हैं। केन्द्र सरकार ने फिलहाल वाराणसी में गंगा प्रदूषण रोकने के लिए 43 करोड़ रुपये की मंजूरी दी है। आगे भी इस कार्य में धन की कमी न होने देने का आश्वासन केन्द्र और राज्य सरकारों ने दिया है।

वाराणसी में गंगा तट पर प्रदूषण की रोकथाम के अलावा शहर में भी सुधार के कार्यक्रम लागू किये जायेंगे। घाटों के सुधार एवं मरम्मत पर 6 करोड़ 80 लाख रुपये का व्यय करने जा रहे हैं। यह मरम्मत और निर्माण करते समय यह पूरी तरह ध्यान में रखा जाएगा कि वाराणसी के इन प्राचीन घाटों की विशेषता एवं सौन्दर्य नष्ट न हो तथा वाराणसी के घाटों का स्वरूप वही रहे जो देश-विदेश के लोग सदियों से देख रहे हैं। इसके अतिरिक्त शहर की गलियों के सुधार, कूड़ा-करकट के निस्तारण और आधुनिक सुलभ शौचालयों के निर्माण के लिए भी बड़े पैमाने पर कार्य किये जा रहे हैं।

नगर में विभिन्न कुंडों तथा तालाबों का जीर्णोद्धार किया जा रहा है जिससे स्वच्छ जल उपलब्ध रहे। नदी के किनारे दो शवदाह-गृह बनाये जा रहे हैं। घाटों पर प्रबन्ध देखने तथा वहां शान्ति-व्यवस्था बनाये रखने के लिए नदी पुलिस संगठन को मजबूत बनाया जा रहा है। इस नदी पुलिस के दस्ते 6 मोटर बोटों के माध्यम से इन लम्बे घाटों के तट पर निगरानी रखेंगे।

वाराणसी से गंगा निर्मलीकरण अभियान के शुभरम्भ के ऐतिहासिक अवसर पर प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी की भारतीय संस्कृति के प्रति अभिरुचि एवं श्रद्धाभाव की देशव्यापी सहराहना की गयी है और इस परियोजना को व्यापक जनसमर्थन मिला है। प्रधानमन्त्री ने इस अवसर पर इस कार्यक्रम को जनान्दोलन बनाने की आवश्यकता बनाने पर बल दिया और कहा कि हम गर्व के साथ कह सकते हैं कि इस परियोजना के एक-एक कार्य को जितना जन समर्थन और सहयोग मिल रहा है, वह अद्वितीय है। प्रधानमंत्री ने गंगा को राष्ट्रीय एकता का प्रतीक बताते हुए गंगा के साथ ही सभी नदियों के जल के शुद्धिकरण के लिए सरकार के संकल्प को दुहराया है। इस अवसर पर काशी में आयोजित गंगा महोत्सव भी अपने आप में राष्ट्रीय एकता के लिए किये जा रहे कार्यों की दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयास सिद्ध हुआ है। □

डी० 6/13 रानी भवानी गली
वाराणसी-221001

सवारी

गंगेश गुंजन

...मुछैल कंडक्टर ने अपने थैले से एक चौवन्नी निकाली और उसकी ओर बढ़ायी। उसने नहीं ली। दुबारे कहने पर भी नहीं ली और रोनी आवाज में 9190 गाड़ी की घोषणा करता रहा। -'लेता क्यों नहीं है? आकर बिस्कुट खाले। उसने सहानुभूति दिखलाई। –'नहीं अब हम भीख नहीं लेते हैं। हम काम करते हैं पैसा लेते हैं।' उसने उम्र से बढ़कर सख्ती और गंभीरता से कहा....



वह जो महीन आवाज में बस स्टैण्ड के लाउड स्पीकर पर खूब जोर-जोर से घोषणा कर रहा है-सुन रहे हैं-हां-हां बच्चा ही है लड़का-हां, हां, महज 9-10 साल का बच्चा, वह मेरे गांव का है। सुनिये कह रहा है-"बी० पी० पी० 1365 नं० की गाड़ी डिलक्स सुपर फास्ट पटना के लिए खुलने वाली है। यात्रीगनो, बी० पी० पी० 1365 नं० की गाड़ी पटना के लिए आठ बजकर बीस मिनट पर खुलने वाली है। आप अपना-अपना अस्थान ले लें। यात्रीगन बी० पी० पी० 1365 नं० की गाड़ी।" प्राइवेट बस स्टैंड पर यात्रियों से भरे गड्डु-मड्डु वातावरण में खलबली मच जाती है और बस पकड़ने की आपा-धापी शुरू हो जाती है।

खड़ी बस में एक ही जगह जोर से एक्सलेटर दबाने का शोर और लोगों की होड़ कि कहीं बस न छूट जाय। सुनिये वह लड़का इसी बीच फिर दूसरी गाड़ी के लिए चिल्लाने लगाता है, "बी० पी० ए० 1965 नं० की गाड़ी जयनगर से आई है, जिन यात्रियों को दरभंगा, मुजफ्फरपुर जाना है-उस नोन स्टाफ (नन्-स्टाप) बस में सीट ले लें। जिन यात्रीगनों को दरभंगा, मुजफ्फपुर जाना है नन् स्टाफ गाड़ी बी० पी० ए० 1965 में तुरंत सीट लूट लें।"

वह लड़का एक छोटी सी काठ-गुमटी से घोषणा कर रहा है। धूल से भरी लाउड स्पीकर की बैटरी आगे धरी है और माइक्रोफोन गंदे कपड़े से लिपटा हुआ है। वह हर बार उठ करके माइक ऑन करता है और बोलना शुरू करता है। फिर बोलकर पुट् से आफ कर लेता है और नंगे पैर गुमटी से कूदकर नीचे आता है, टहलने लगता है।

देख रहे हैं अभी वह बी० पी० ए० 1965 गाड़ी के बारे में मुसाफिरों को बतला कर नीचे उतर आया है और इधर-उधर आंखें दौड़ा रहा है।

उसके गंदे पैंट में पीछे की तरफ खाकी पैबन्द लगे हैं। पैरों में गंदगी, धूल और मोबिल मिली मिट्टी लगी है। बूशर्ट में एक भी बटन नहीं और जेब के पास और कंधे पर फटा हुआ है। वह इन कपड़ों को शरीर पर झुलाता रहता है और अपना काम करता रहता है—यहां गाड़ी के बारे में मुसाफिरों को बतलाने का काम करता है। उसकी यह महीन आवाज, पहली बार सुनने वालों को चौंकाने वाली लगती है फिर लोग दो बातों से मोह में पड़ जातें हैं—एक तो आवाज महीन है दूसरे बच्चा है जिसे इतनी छोटी उम्र से पेट के लिए मज़दूरी करनी पड़ती है। तन पर ठीक से कपड़े नहीं। भर पेट खाना भी शायद मयस्सर नहीं होता।

जी हां, खाने का भी कुछ ठीक नहीं। उतने पैसे तो होते नहीं कि बाज़ार में भर पेट खा सके। दूसरी बात यह है कि अगर मज़दूरी में मिलने वाले रुपयों से वह सिर्फ अपना खाना ही खा ले तो फिर उसकी अभागिन मां का क्या होगा? जो कहने को तो पति और बेटों वाली है लेकिन उसके पास न तो रहने को घर है और न खाने को अन्न, न पहनने को तन पर कपड़े। अनपढ़ और गंवार। गांव के घरों में चौका बर्तन करके भी गुजर नहीं कर सकती क्योंकि वामन जात है। उससे जूठन घुलवा कर कौन पाप मोल ले। हां, यही तो विडंबना है समाज की।

इस लड़के का नाम मंगनू है, मुफ्त में। यह कहता है कि वह तो मां-बाप के पास मुफ्त में ही आ गया है मंगनू है। मां को तो थोड़ी फिक्र है लेकिन बाप को कुछ नहीं। मरे, जीये जो करे। तब मंगनू

टोले के घरों में सुबह से रात तक भीख मांगता और खा कर जीता था। नफ़रत और दुतकार में।

बाप क्या करता है? बाप गांव का नेता हो रहा है। हां, हां, वही नेता जो नेताओं की हंसेरी का इन्तजाम करता है। गांव में पंचायत में अपने नेता के लिए जनमत तैयार करने की मामूली कमाई पर जीवन बिताता है। झूठ मूठ इधर से उधर करता है। पंचायत और बी.डी.ओ. आफिस से मघुवनी तक पान खाता हुआ चक्कर काटता है और जब निठ्ठलेपन पर बीवी कोई बात सुनाती है तो नाराज़ होकर उसकी कसकर पिटाई करता है। और हर बार झोंटा पकड़ के आंगन से घसीट कर बाहर धकेलता है और चेतावनी देता है कि बस, इस घर में नहीं घुसो दुबारे, नहीं तो पसलियों की चटनी बना डालूंगा। और पत्नी सचमुच भय से दो चार दिन पड़ोस या किसी के घर में छुपी रहकर जीवन बिताती है। ऐसे में पति से डरी हुई औरत मायके भागती है। लेकिन उस बेचारी के तो मां-बाप भी नहीं। भाई-भौजाई पर क्या आसरा? बेटा मंगनू।

मंगनू की नौकरी। वह तो बस स्टेण्ड के ठेकेदारों और बस कंडक्टरों और ड्राइवरों ने एक सौ रूपया माहवारी पर उसे तय किया है कि सुबह 6 बजे से रात नौ बजे तक मुसाफिरों को बस की पक्की जानकारी देनी है। कई बार बोलते-बोलते उस शिशु का गला फंस जाता है। फिर भी लगातार भूखा प्यासा ही वह काम करता रहता है।

– हां, शुरू में तो उसे बोलना कहां आता था। समझा कर बतलाकर बोलना सिखाया गया कि यह बोलना है। ऐसे कहना है।
सुबह से नौ बजे रात तक नौ बजे वाली पहलेजा घाट की बस जब चली जाती है, जयनगर, तब जाकर उसे फ़ुरसत मिलती है।
– सोता कहां है? वहीं उसी गुमटी में। गुमटी इतनी छोटी है पर पैर मोड़ तोड़ कर उसी में तो वह पिछले डेढ़ साल से सो रहा है।
–कष्ट होता होगा? होता ही है। बेचारा डेढ़ साल से जैसे पेट तक ही मात्र सोया है। पूरा शरीर कभी नहीं सोया। उसी लाउड स्पीकर की बैटरी पर लात रखकर किसी चीज पर सिर रखकर बोलते-बोलते ही सो जाता है। सुबह जैसे बसों की हड़बराहट आरम्भ हुई कि उसकी नींद खुल जाती है और माइक की स्वीच पुट से ऑन करता हुआ बोलने लगता है–
"यात्रीगनों। सुपर फास्ट लेक्जरी कोच बस-1353 कुछ मिनट में खुलने ही वाली है। यात्रीगन सुपर फास्ट लेक्जरी कोच न. 1353 पूरैनियां के लिए खुलने ही वाली है। आप जल्दी जल्दी अपना टिकट कटा लें। जगह लूटें और पुरैनियां जायं। यात्रीगन....।

उंघाया रहता है सो! तो क्या हुआ उंघाये हुए में भी वह इतना अभ्यस्त हो गया है अब कि शायद ही उससे बतलाने में भूल होती है। सुबह में 5 से 8 बजे तक लगातार कई बसें खुलती हैं पटना पूरैनिया मुजफ्फरपुर के नाम और उसे मुंह धोने की भी फुर्सत नहीं रहती है। जब आठ बीस वाली बस, पटना वाली, खुल जाती है तब वह हड़बड़ाकर गुमटी के नीचे उतरता है, मुंह धोता है और तलाशता है कि रात की रोटी बची हुई है या नहीं। यदि बची मिल गई तो उसे हाथ में लिए किसी भी चाय की दूकान पर पहुंचता है और एक ग्लास चाय लेकर उसमें डुबो-डुबो कर खाता है।

इसी बीच कोई बस आ गई तो भागा-भागा अपनी गुमटी में जाकर माइक ऑन करके बोलने लगता है कि बी.पी. पी. 5168 स्टेन्ड में आकर लग चुकी है। यात्रीगन उसमें बैठ जायं जो बेतिया जाना चाहते हैं। गाड़ी बस दस मिनट में खुलने वाली है। बी.पी. पी. 5168 न.। तुरन्त सीट ले लें। उसके बाद बेतिया के लिये फिर दोपहर में ही बस मिलेगी। बेतिया के यात्री धड़धड़ाकर बस में धक्का धुक्की करते जगह लेने लगते हैं। और वह बीच बीच में ठंडी हो रही चाय की घूंट और उसमें भिगोई हुई रोटी मुंह में डालता हुआ चबाने लगता है। कई बार दोनों, काम साथ साथ करने लगता है और सुनने वालों को हंसी आ जाती है। बेचारा भुखाया हुआ है।

– हां तब क्या? उसको इतनी छूट है पूरे स्टैंड की दुकानों में कि वह एक गिलास चाय या एक बिस्कुट कभी-कभी जिस किसी से भी चाहे ले लेता है इस बात की व्यवस्था बस स्टैंड की एसोशिएशन ने कर रखी है उसके लिए। इस प्रकार उसका चाय का काम चल जाता है। बल्कि कभी-कभी अपनी मां को भी गुमटी के पास बिठा कर चाय पिलवाता है। हां, कभी-कभी एक दो थाप भी लगवा लेता है कंडक्टर या ड्राईवर से कि उसकी बस के बारे में वह एक ही बार क्यों बोला। ज्यादा क्यों नहीं?

– मां। उसकी माँ? नहीं रहती नहीं है यहां। मंगनू के लिए हर रोज दोपहर खाना पहुंचाने आती है। रोटी या भात। तीन मील पर गांव है। मंगनू स्वयं तो गांव नहीं जाता। फुर्सत कहां है। सुबह से रात तक तो बसों के आने-जाने और यात्रियों को बतलाने का इन्तजाम रखना पड़ता है, इसलिये खाना माँ घर से ही बना कर ले आती है। उसे दोपहर में खिलाती है। पानी पिलाती है और बर्तन बांध कर फिर गांव चली जाती है।

और आमदनी कोई खास नहीं? हां इधर उसे हर गाड़ी से खुलने के बाद एक चौअन्नी मिल जाती है। उनमें से थोड़ा बहुत रखकर वह दिन भर के पैसे मां को दे देता है। मां जरूरी सौदा-सुलुफ खरीदती हुई रात होने से पहले गांव चली जाती है।

कभी-कभी मां को खाना लेकर आने में देर तो हो ही जाती है। तो मंगनू भूखा इन्तजार करता रहता है।

क्या उसे महसूस नहीं होता होगा कि उसी की उमर के लड़के गांव की पाठशाला में सिलेट पेंसिल किताब लेकर पढ़ते हैं, और वह अभी तक अपना नाम लिखना भी नहीं जानता है जबकि बसों के नम्बर पढ़ लेता है। उल्टे उसे अपने पेट के लिए यह काम करना ही पड़ता है, अपनी मां के लिए भी कमाना पड़ता है। बाप के लिए भले नहीं।

– बाप कहा न, है। लेकिन उसकी कोई फिक्र नहीं रखता। बीवी को पीटता रहता है। अब तो बल्कि दिन में इस तरह बेटे का खाना लेकर शहर जाने से भी कड़ी रोक खड़ी करता है कि ब्राहमण की स्त्री दिन-देखार गांव से बाहर जाएगी। हमारा सिर नीचा होता है, बेइज्जती होती है कि मेरी स्त्री दिन में बाज़ार जाती है। ऐसा कभी होता था?

तो होगा नहीं? झगड़ा हुआ ही पति पत्नी में। मंगनू की मां ने कहा–का है जाती हूं तो? बेटे का खाना पहुँचाने नहीं जाऊं? वह नन्हा बच्चा काम भी करे, हमें कमाकर खिलाये इतना छोटा

बच्चा और हम उसके लिए झूठी इज्जत रखें, गांव में बैठे रहें? और फिर आप टोकने वाले कौन होते हैं? आपका खाती-पहनती हूं? खाती-पहनती हूं इस छोटे से बच्चे के पसीने से। बहुत लाज वाला आये हैं। इतने बच्चे को बजाय किसी पाठशाला में पढ़ाई के लिए भेजने के, सुबह से रात तक मजदूरी करवा रहे हैं और कहते हैं कि इनका अपमान होता है। लज्जा तो आती नहीं। इसी की कमाई पर पान चाभे रहते हैं दिनभर। हां, स्वाभाविक ही है। मारता नहीं? इस पर पति ने उसे तड़ातड़ तमाचे जड़ दिये। उसने भी जहां तक संभव हुआ प्रतिरोध किया, फिर पति के मुंह को नाखून गड़ाकर नोच दिया। तब तो उसके क्रोध की सीमा नहीं रही और उसने उसकी जमकर पिटाई की। इतनी पिटाई की, इतनी पिटाई कि वह न तो रोटी भात कुछ बना सकी मंगनू के लिए और ना ही वहां जा सकी। मन विकल रहा कि आज वह भूखा रहेगा। बार-बार उसकी आँखे गांव की सड़क की तरफ फिरती होंगी कि मां आ रही है....। वह पति की पिटाई से हो रही देह की पीड़ा से कम मंगनू के भूखे रह जाने की तकलीफ से अधिक व्याकुल हो रही थी।

उस दिन मंगनू बाट जोहता बैठा रहा कि अब आयेगी मां, तब आएगी मां। लेकिन मां जब नहीं आई तो उसे परेशानी होने लगी। भूख से उसकी अंतड़ियां ऐंठी जा रही थीं। आज पता नहीं क्या हुआ था कि बस भी बहुत कम आ जा रही थीं और यात्री भी बहुत कम। सो बस वाले भी उसे चौअन्नी नहीं दे रहे थे (दूकान वाले भी आज कुछ बेरुखी से ही पेश आ रहे थे। बिक्री बहुत कम थी सो वे चाय या बिस्कुट मांगने पर बार-बार टाल रहे थे कि थोड़ा रुको-मंगनू। थोड़ी बिक्री कर लेने दो। आज तो बिक्री बट्टा की हालत खराब है। वह हताश होकर आता था। एक बार तो उसने यह भी कहा कि इसे उधारी समझना, मुफ्ती नहीं। फिर भी दूकानदार ने ध्यान नहीं दिया।

पैसे? उसके पास पैसे कहां से आयेंगे? वह तो रोज मां को जोड़कर दे देता है। अपने पास रखता नहीं। एक बार सात रुपए रखे थे जेब में। थोड़ी देर के लिए पाखाना गया। कुर्त्ता टांग गया गुमटी में। वह लौटकर आया तो जेब खाली तब से एक-एक पैसा जोड़कर मां को दे देता है। मां जमा करती है या क्या करती है उसकी उसे न खबर है न चिन्ता।

आज चूंकि पैसे नहीं थे तो वह बहुत पछता रहा था। और तय कर रहा था कि अब से थोड़े पैसे वह अपने पास ही रख लिया करेगा। क्योंकि तब उसका मुंह तीता तो नहीं बना रहेगा इतनी इतनी देर तक। लेकिन सो जब करेगा तब। अभी तो सामने कई समस्यायें हैं। भूख से आग लग गई है अंतड़ियों में। क्या करे वह? मन छटपट छटपट कर रहा था उसका। कभी इधर उतरता कभी उधर उतरता। कभी मैदान में ही टहलता। तब तक एक मुछैल कंडक्टर उसके पास आया और गाली देता हुआ बोला—स्सा....। हमलोग तुमको मुफ्त का रुपैया देते हैं? इसी तरह मटरगश्ती के लिए?'

—'तो हम तो बोल ही रहे हैं मैक पर।' डरे डरे हुए उसने सफाई दी।

—'स्साला-डी.जी.पी. 9190 कै मिनट से आकर खड़ी है यात्री सब बौआ रहा है और तुम स्सा... टहल रहे हो? क्यों नहीं बोलते माइक पर। वह चेतावनी देकर जाने लगा तो उस लड़के ने साहस करके कहा—'अब केतना बोलें। गला तो दुख रहा है। और आप लोग इस मास से कहां वेशी रुपैया देते तो—उलटे दस रुपैया कमा ही दिये हैं। हमारा पेट कैसे भरेगा?'

वह आदमी जाते-जाते लौट एक तमाचा उसके मुँह पर मारते हुए बोला-अरे चोट्टा, तुम्हारा मुंह खुल गया है? भीख मांगकर गुजर करता था। हम लोगों ने यह काम दिया और आज हमीं से मुंह लड़ा रहा है। शैतान कहीं का?'

— क्यों नहीं लड़ायें? वह गाल सहलाता हुआ रूआंसा किन्तु निडर स्वर में बोला-'पेट नहीं भरेगा तो बोलेंगे नहीं। भीख मांगकर भी पेट भरता था। और मिहनत करने पर भूखे रहें? आज हमको खाना भी नहीं मिला है। भूखे पेट में दरद हो रहा है।' बोलते-बोलते वह रूआंसा हो गया फिर रोने लगा।

—'क्यों खाना क्या हुआ?' उसने कुछ द्रवित होकर पूछा।—'मां आई नहीं। जाने क्या बात है। हो सकता है फिर किसी बात पर बाबू ने उसे मारा-पीटा हो, नहीं आने दिया हो?' वह रूआंसा हो गया। —'तो तू भुखले हो अभी तक? बिस्कुट तिस्कुट क्यों नहीं खा लिया?'

—'कहां से खायेंगे? 748। ड्राइवर से मांगा चार आना। नहीं दिया। फिर 1339 से मांगा। उसने भी नहीं दिया। अब कोई देना ही नहीं चाहता। चौअन्नी में भी आनाकानी करता उहता है।'

—'दुकान से लेकर खा-पी लेता।' उसने सुझाव दिया।-'क्या खायी लेता? चार बार गया हूं। मुफ्त तो नहीं ही, खूब सच-सच कहा कि उधारी दे दो, पैसा लौटा देंगे। अभी साथ में पैसा नहीं है तो सब यही कह रहा है कि आज बिक्री बट्टा कम है, बाद में आना। फिर बाद में गये। तो फिर बाद में आना।' कहते-कहते वह रो गया। और जल्दी से अपनी गुमटी में घुस गया। फिर गाड़ी न० चिल्लाने लगा कि जात्रीगन जल्दी बैठिये। जात्री टिकट कटाकर सीट लूटिये। गाड़ी 9190 मुजफ्फरपुर जा रही है।

मुछैल कंडक्टर ने अपने थैले से एक चौअन्नी निकाली और उसकी ओर बढ़ायी। उसने नहीं ली। दुबारे कहने पर भी नहीं ली और रोनी आवाज में 9190 गाड़ी की घोषणा करता रहा।-'लेता क्यों नहीं है? आकर बिस्कुट खाले। उसने सहानुभूति दिखलाई।—'नहीं अब हम भीख नहीं लेते हैं। हम काम करते हैं पैसा लेते हैं।' उसने उम्र से बढ़कर सख्ती और गंभीरता से कहा।

—'लेकिन यह भीख कहां है? तेरी चौअन्नी है।'

—'तो पहले क्यों नहीं दी? आपने मारा क्यों?' वह पूछने लगा।

—मुझे क्या मालूम था रे चोट्टा कि तेरे साथ यह सब हुआ है। अगामी मीटिंग में मैं यह बात उठाऊंगा कि तेरे साथ लोग अच्छा व्यवहार नहीं करते। अभी ले लो, जाकर कुछ खरीदकर खा ले। उसने फिर चौवन्नी बढ़ायी लेकिन मंगनू स्थिर बैठा रहा। नहीं ही ली। खीझकर-'मर जा चोट्टे। बित्ते भर का छोकड़ा जिद्दी कैसा है?' कहता हुआ कंडक्टर अपनी बस की तरफ चला गया और बस थोड़ी ही देर में खुल भी गई।

वह अब भूख के मारे कुछ कहीं कर नहीं पा रहा था इसलिये बैटरी पर कोहनी अड़ा कर अधलेटा हो गया। और गाड़ी के आने की प्रतीक्षा करने लगा। तब तक 7273 न. गाड़ी आती देखी और चौकस हो गया। जैसे ही स्टैंड के अहाते में गाड़ी पहुंची कि उसने बोलना शुरू किया। यात्री अपनी-अपनी सुविधा से भागम भाग करने लगे। उस दिन बसों का आना-जाना बहुत कम रहा क्योंकि

लगातार रास्ते में रूट लाइसेंस की चेकिंग हो रही थी। उड़न-दस्ता द्वारा और चूँकि ज्यादा बसें लाइसेंस से अलग रूट में आती जाती हैं, पकड़ ली गई और स्टैंड तक-बसें कम पहुंची। बहुत सी बसें पुलिस द्वारा घेर कर जब्त कर ली गईं।

ऐसी हालत में स्वाभाविक ही था कि बहुत कम बसें आयें। सो दोपहर तक किसी तरह बसों का एनाउन्समेंट चलता रहा। शाम के बाद स्टैंड पर एक दम सन्नाटा हो गया।

मंगनू की अतंड़ियां पानी पी-पी कर और भी कुलबुला रही थीं। वह अजीब बेचैनी का शिकार हो गया था। किसी तरह उसने सोने का उपक्रम किया। नींद नहीं आई भूख से। धीरे-धीरे दूकानों के चूल्हे बुझ गये। लोग, लगभग सभी चले जा चुके। बस स्टैंड सुबह तक के लिए जैसे नींद पड़ गया लेकिन उसकी बुलबुलाहट नहीं।

वह पेट मोड़े करवटें बदलता रहा। भूख से रात पहाड़ हो रही थी। सो बड़ी मुश्किल से रात कटी। सुबह होने पर उसके गले में पूरी ताकत नहीं मिल पा रही थी कि वह माइक पर बसों के आने-जाने की घोषणा कर सके। सुबह होते ही जो भी तंद्रा उसे लगी थी बिना किसी बस की आवाज के ही नींद खुल गयी। उसे गहरी प्यास लगी थी। चापा कल पर जाकर उसने छाक भर पानी पिया और मन ही मन तुलना करने लगा कि आज माँ जल्दी ही खाना लेकर आएगी। और वह काम करते हुए इन्तजार करने लगा।

लेकिन मां देर तक फिर खाना नहीं ला पाई। तब उसे लगने लगा कि बात क्या है। मां क्यों नहीं आई। खाना क्यों नहीं ले आई। उसे भीख मांग कर खाने के दिनों की तकलीफ महसूस होने लगी। याद करते ही उसकी देह के रोम-रोम खड़े हो गए। उसके मन में अचानक आया कि वह मां को देख आये और कुछ इन्तजाम कर आये।

वह गया स्टैंड के मैनेज़र से छुट्टी लेने। पहले तो उसने जाकर नुक्कर की। फिर उसे किसी तरह जाने की अनुमति दे दी और वह अजीब अस्थिरता से गांव की ओर चला। गांव पहुंचना इससे पहले कभी उसे इतना कठिन नहीं लगता था। बहुत देर तक चलते रहने के बाद ही वह गांव तक पहुँच सका।

वहां पहुंच कर जो दृश्य देखा तो अचरज में रह गया। उसका नन्हा मन तड़प उठा। मां की कनपट्टी पर गंदे कपड़े की पट्टी लपेटी हुई थी और वह पटिया पर लेटी हुई कराह रही थी। उसकी बगल में दयनीय बनी मंगनू की चार साल की बहन बैठी रो रही थी। मंगनू के पहुंचने पर उसने आँखें खोलीं और रोने लगी—'तू तो भूखे होगा अभी तक? मां ने पूछा। हां, हां, मां। तुम्हें क्या बाबा ने मारा है? मां ने बिना कुछ कहे सिर हिला दिया। इस अभागन ने भी कुछ नहीं खाया है। मां ने बेटी के बारे में कहा। मंगनू तिलमिला गया और जैसे अचानक तय कर बैठा। उसने कहा—'अब चलो, तुम लोग भी वहीं। जैसे-तैसे रहना। यहां बाबू से कब तक सिर फोड़वाती रहेगी? मां ने आँखें तो खोली पर चिन्ता से बोली-'लेकिन इतने ही पैसे में से हमलोग तीनों कैसे खाएँगे?'—'अभी कैसे खाते हैं मां?' उसने पूछा।

—'अभी तो हम गांव से बनाकर ले जाते हैं बेटा। हम दोनों तो गांव में ही रहते हैं। खर्चा कम बैठता है।'—'लेकिन तुम्हारी देह बाबू की पिटाई से टूटती-फूटती रहती है। अब मां की आँखें धारा प्रवाह झहर रही थीं। और वह एकदम निश्चित कर चुका था कि मां, बहन को साथ ले जायेगा।

शाम तक उसने तैयारी की और मां को ले चला। तब जैसा संदेह थी, बाप ने रोका। क्योंकि उसे अब लग रहा था कि अपनी स्त्री से जो भी कुछ रुपये मांगकर या ऐंठ कर वह पा लेता था अब उससे भी हाथ धोना पड़ेगा। बेटा हाथ से निकल जायेगा। इसलिये उसने बुद्धि से काम लेते हुए कहा—'क्यों उकता गया है तू?' 'उकताना क्या है बाबू। आपका अन्याय बहुत सह लिया।' —'क्या अन्याय? अरे स्वामी हूं, बाप हूँ-इतना भी अच्छे बुरे का अधिकार नहीं है मुझे तुम लोगों पर?'

बेटा थोड़ा द्रवित हो गया। पता नहीं मन में क्या आया कि उसने आहिस्ते से कहा—'अब हम यह बस स्टैंड वाला काम छोड़ देंगे।'

—'अरे? कितना अच्छा तो कमाता है। क्यों छोड़ेगा भला। इतनी अच्छी और आराम की नौकरी?' बाबू ने समझाया।

— 'कहते हैं कि थोड़ा पढ़ लिख लेने से जीवन सुधर जायेगा। अभी तो कुछ कर-धर ही नहीं सकते। थोड़ा पढ़ लिख लेंगे तो'...'क्या होगा पढ़ाई से कितने सारे लोग तो एम.ए.बी.ए. पास करके बैठे हुए हैं, अपने ही गांव में देख लो न। तू तो बिना पढ़े लिखे इतनी कमाई कर रहा है।' बाबू ने समझाया।

मंगनू खूब गंभीर हो गया, उसने कहा—'लेकिन बाबू सो तो हम भीख मांगकर भी पूरा कर रहे थे। फिर नौकरी क्यों?' वे इसका कोई ठोस जवाब नहीं दे पाये।

लेकिन उसकी भावना यह थी कि मंगनू यही काम करता रहे। वैसी ही परिस्थिति रखना चाहते थे जिसमें मंगनू की आमदनी बस स्टैंड वाली बनी रहे। क्योंकि इसी पर बहुत सा काम चल रहा है।

वह तो निठल्ला, निरक्षर नेता है। मुखिया की हां में हां मिलाता है तो वह चाय नास्ता करा देता है। उसकी हां में हां लगाता है तो दो रुपये हथेली में धर देता है। दिन भर इस दालान से उस दालान बस पान चबा रहे हैं। बातों में उलझें हैं। नहीं तो दोस्तों के साथ शहर टहल आने गये। भंग खाकर पान चबाते हुए लौट आये। इसलिये वह चाहता था कि मंगनू की यह आमदनी बनी रही ताकि उसका निठल्लापन इसी तरह आनन्द से कट सके। लेकिन यह तो संभव नहीं था। जाने कहां से और क्यों, मंगनू के मन में पढ़ाई की इच्छा जग गई थी। वह लगातार चाह रहा था कि वह पढ़े। उसके लिए उसके भोले मन में एक आधार भी था-ठोस। पैसे उसने मां के पास जोड़कर रखे हैं। जरूर ही मां उसे पढ़ने के लिए उत्साहित करेगी।

लेकिन उसी उत्साह में जब उसने मां से यही प्रस्ताव किया तो वे भी चौंकी और घबरा सी गई-कि यदि तू पढ़ने लगेगा तो हमारी जिन्दगी कैसे कटेगी। कहां से पैसे आयेंगे। तेरे बाबू ने घर से निकाल ही दिया है। इस अभागिन तेरी बहन का, मेरा क्या होगा? मैं क्या खाऊँगी?' इस प्रश्न के इस रूप में खड़े होने की ज़रा भी उम्मीद नहीं थी मंगनू को। वह स्तब्ध रह गया। बुझ गया मन ही मन।

तब मां ने पूछा तुम्हारे नौकरी छोड़कर पढ़ाई करने से भी क्या फायदा होगा? कोई तो नहीं। खाली पेट ही तो नहीं है, इस

(शेष पृष्ठ 41 पर)

स्वयं के प्रति तटस्थता कठिन साधना मांगती है – अज्ञेय

हिन्दी साहित्य की उपेक्षित विधाओं, 'आत्माकथा, जीवनी तथा संस्मरण' पर नयी दिल्ली के रवीन्द्र भवन में गत 10-11 आगस्त को एक द्विदिवसीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। साहित्य अकादेमी के तत्वावधान में आयोजित इस संगोष्ठी में हिन्दी जगत के अनेक सुप्रसिद्ध रचनाकारों और साहित्य प्रेमियों ने भाग लिया। इसका संचालन श्री शानी ने किया। आरम्भ में अकादेमी के सचिव डा० इन्द्रनाथ चौधरी ने स्वागत भाषण किया।

संगोष्ठी का उद्घाटन करते हुए 'कलम के सिपाही' के लेखक श्री अमृतराय ने कहा कि हिन्दी भाषा में जीवनियों की कमी है और इसका कारण तथ्यों के संकलन करने और फिर तटस्थ होकर उनसे संबंधित व्यक्ति को उभारने में आनेवाली कठिनाइयाँ हैं।

विषय-प्रवर्तन करते हुए श्री सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन ने कहा कि स्वयं के प्रति तटस्थता कठिन साधना मांगती है। आत्मकथाकार में एक विशेष प्रकार की अहमन्यता होती है, लेकिन उसमें कुछ विशेष गुण भी होते हैं, जो काफी सीमा तक इस अहमन्यता के प्रभाव को निरस्त कर देते हैं। यह अहमन्यता मनुष्य को कभी-कभी प्राप्त हो जाने वाले आत्म-साक्षात्कार का ही एक रूप है। आत्मकथा लिखनेवाले सभी लोग झूठ लिखने को बाध्य हो जाते हैं—वे अधिक से अधिक अधूरा सच ही लिख पाते हैं। पूरा सच लिखने के लिए उपन्यास ही अधिक उपयुक्त माध्यम है। उन्होंने अच्छी जीवनियों के अभाव के कारण ऐतिहासिक तथ्यों और ऐतिहासिक सामग्री के प्रति समाज की गहरी उदासीनता के भाव को बताया। उन्होंने कहा कि अच्छे और प्रचुर जीवनी-साहित्य के अभाव में राष्ट्र की अस्मिता स्थापित नहीं हो सकती। उन्होंने आत्म-संस्मरण को भी महत्वपूर्ण बताया, क्योंकि यह युग तथा स्वयं के संवेदन और प्रवृत्तियों को समझने, हमारी मूल्य-दृष्टि को गढ़ने और उसे नैतिक आधार देने में सहायक होता है। पत्र-व्यवहार का इसलिए महत्व है क्योंकि इससे पात्र के गुणात्मक पक्ष का परिचय मिलता है। उन्होंने कहा कि व्यस्तता के वर्तमान युग में डायरी और रिपोर्ताज का महत्व बढ़ता जा रहा है।

महाराज कुमार डा. रघुवीर सिंह ने अपने अध्यक्षीय भाषण में साहित्य अकादेमी से श्री संतराम बी. ए. की जन्म शताब्दी मनाने और यात्रा-विवरणों एवं जीवनियों को प्रकाशित करने का अनुरोध किया। श्री विष्णु प्रभाकर ने धन्यवाद ज्ञापन किया।

श्री मुकुन्द लाठ ने 'आत्मकथा' पर अपना अलिखित आलेख सुनाते हुए 'आत्म' की दार्शनिक व्याख्या की। उन्होंने कहा कि आत्मकथा में दो बातें होती हैं—आत्म और कथा। 'आत्म' में भाव और कर्म दोनों शामिल होते हैं। "मैं" का जो अन्य के साथ संबंध है उसी से 'आत्म' बनता है। इसीलिए आध्यात्मिक यात्रा को हम आत्मकथा नहीं कहेंगे, क्योंकि वहां उसका दूसरों के साथ संबंध नहीं होता। ठीक उसी तरह जैसे अंतरिक्ष यात्री द्वारा ऊपर से देखे गये विश्व का विवरण विज्ञान का अंग होगा, आत्मकथा का नहीं। उन्होंने भारत में आत्मकथा के अभाव का मूल कारण नाट्य-शास्त्र की परम्परा को बताया, जिसके कारण साहित्य पर अनेक प्रतिबंध लगे, जिससे उन्मुक्तता का भाव दब गया।

बहस में भाग लेते हुए श्रीमती पुष्पा बंसल ने शिकायत की कि श्री मुकुन्द जी ने सिर्फ आत्म की ही चर्चा की, कथा की नहीं। डा. विनीता अग्रवाल ने कहा कि आत्म गोपन और आत्म प्रकाशन के बीच से रास्ता निकालने पर ही आत्मकथा में रचनात्मकता आ सकती है। यह एक जटिलतम शिल्प है। मन के तीन क्षेत्र होते हैं-सकारात्मक, नकारात्मक और अनिश्चयात्मक।

डा० विजय अग्रवाल

आत्मकथाकार नकारात्मक से बचने, सकारात्मक को व्यक्त करने और अनिश्चयात्मक को सकारात्मक के क्षेत्र में खींच लाने के संघर्ष से जूझता है। डा. शशि शेखर तिवारी ने 'आटोबायोग्राफी' के लिए 'आत्मकथा' संज्ञा को सही माना। श्री सौरि राजन का कहना था कि आत्मकथा का सही स्वरूप स्पष्ट नहीं है, और 'स्वकथा', 'आत्म-चरित' तथा 'आत्मकथा' शब्दों पर विस्तार से विचार होना चाहिए। डा. विश्वबन्धु 'व्यथित' ने 'हिन्दी का आत्मकथा-साहित्य: सिद्धान्त निरूपण और विकासक्रम' शीर्षक आलेख पढ़ा। उनके अनुसार "आत्मकथा केवल आत्मप्रकाशन, आत्मप्रदर्शन, आत्मव्याख्यान और आत्मसम्प्रेषण की ही कला नहीं, आत्मनिरीक्षण, आत्मसमीक्षण, आत्मपरीक्षण, आत्मविश्लेषण और आत्मविवेचन की सर्वश्रेष्ठ प्रक्रिया भी है। उन्होंने आत्मकथा जीवनी, पत्र, डायरी, रेखाचित्र तथा यात्रा साहित्य के पारस्परिक अंतर का भी उल्लेख किया।

अपने अध्यक्षीय भाषण में डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने बताया कि पश्चिमी संस्कृति का जो आक्रामक प्रभाव हमारे ऊपर पड़ा, उससे अनेक विधाओं का जन्म हुआ, आत्मकथा भी उसी में से एक है। लेकिन उन्होंने चेतावनी दी कि आत्मकथा हमारे अपने



चित्र में (बांये से दायें) श्री शानी, श्री अमृत राय, विष्णु प्रभाकर और नरेश मेहता।

सांस्कृतिक और जातीय संदर्भ में ही लिखी जा सकती है, जिसकी अभी प्रतीक्षा है। उन्होंने आत्मकथाकार के लिए अहम् के विसर्जन को अनिवार्य मानते हुए महात्मा गांधी को इसका एक प्रतिमान बताया।

संगोष्ठी के दूसरे दिन के प्रथम सत्र में श्री नरेश मेहता और श्री विष्णु प्रभाकर ने 'जीवनी' पर अपने आलेख पढ़े। श्री मेहता ने अपने आलेख 'जीवनी' में जीवनियों के कलात्मक होने पर विशेष जोर दिया। उन्होंने कहा कि रचनाकार की भांति जीवनीकार भी संबंधित देश-काल तथा वर्ण्यचरित्र पर अधिकाधिक तथा कलात्मक पकड़ होनी चाहिए, क्योंकि जीवनियों को इतिहास और कलात्मकता के बीच निरन्तर सृजनात्मक विश्वसनीयता पैदा करनी होती है। जीवनी लेखन के पीछे जीवनीकार की कोई न कोई आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक या राजनीतिक चिन्ता हुआ करती है, और यदि ऐसा नहीं है तो वह जीवनी कभी रचना या कृति नहीं बन सकती। जीवनीकार भले ही समकालीन न हो, लेकिन दोनों के बीच काल का इतना अंतर भी नहीं होना चाहिए कि वर्ण्य व्यक्ति इतिहास लगने लगे, क्योंकि वर्ण्य व्यक्ति के प्रति एक आत्मीय परिचय जरूरी है। जीवनी न तो उपन्यास होती है, और न ही इतिहास, बल्कि उसे व्यक्ति के इतिहास को व्यक्तित्व की कथा के रूप जैसा प्रस्तुत करना होता है।

'अवारा मसीहा' के लेखक श्री विष्णु प्रभाकर ने अपने आलेख 'जीवनी लेखनः एक चुनौती' में पश्चिमी जीवनीकारों के वक्तव्यों तथा अपने अनुभवों के आधार पर जीवनीकार के सामने आने वाली चुनौतियों का उल्लेख करते हुए कुछ मार्ग-निर्देश दिये। उनके अनुसार जीवनी इतिहास, उपन्यास और आलोचना न होकर भी सब कुछ है, और इसीलिए किन्हीं अर्थों में सबसे अधिक चुनौतीपूर्ण विधा है। उन्होंने जिन चुनौतियों का उल्लेख किया, वे थीं—वस्तुपरक दृष्टि, पात्र का चुनाव, पात्र के प्रति दृष्टिकोण, घटनाओं का चयन और सामग्री की तलाश। वे मानते हैं कि वर्ण्य-व्यक्ति के प्रति आस्था, सहानुभूति, सम्वेदन आवश्यक हैं, पर इतनी भी नहीं कि वस्तुपरक दृष्टि को ही धूमिल कर दें। पात्र महान भले ही न हो, लेकिन किसी-न-किसी दृष्टि में महत्वपूर्ण अवश्य होना चाहिए।

सामग्री के अन्तर्गत डायरी, भेंटवार्ताएं, पाण्डुलिपियाँ, संस्मरण, प्रमाणपत्र आदि का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि पात्र को पुनः सर्जित करने की प्रक्रिया में जीवनीकार शोधकर्त्ता से अधिक सर्जक होता है।

बहस में भाग लेते हुए श्री रामनारायण उपाध्याय ने कहा कि सभी साहित्य-विधाएं मिली-जुली हैं। श्री वसन्तदेव का मत था कि जीवनी एक यथार्थपरक लेखन है। कलात्मकता या सृजनात्मकता का आग्रह क्या उसे यथार्थ से काटकर कृत्रिम नहीं बना देगा? श्रीलाल शुक्ल का विचार था कि जीवनी के संदर्भ में जब सृजनात्मकता और कलात्मकता की बात की जाती है तो लेखक से क्या अपेक्षा की जाती है, इसकी भी चर्चा की जानी चाहिए। श्री अमृतराय ने अपने अध्यक्षीय भाषण में 'कलम के सिपाही' के लेखन-काल के संस्मरण सुनाते हुए कहा-''मैंने वस्तुपरक होने की पूरी कोशिश की है। जीवनीकार का काम अलग-अलग तथ्यों की परीक्षा करके उन्हें समग्र रूप में गूंथने का होता है।''

तीसरा और अंतिम सत्र 'संस्मरण' पर था। पहला आलेख श्री रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' ने पढ़ा। यह मूलतः एक संस्मरण ही था। उन्होंने कहा कि मस्तिष्क की स्मृति को लिखना ही संस्मरण है, और यह स्मरण जीवन में कभी आई हुई किसी भी बात का हो सकता है।

श्री भगवती शरण सिंह ने 'संस्मरणः साहित्य की एक विधा' आलेख पढ़ा। संस्मरण का मूलाधार स्मृति को मानते हुए उन्होंने कहा कि ''शेष स्मृतियां ही स्मरण का असली खेल हैं, और इसीलिए 'शेष स्मृतियाँ,' स्मृतिशेष नहीं होती और संस्मरण का कारण बनती हैं।'' संस्मरण उन व्यक्तियों और घटनाओं का इतिवृत्त है, जो कभी लेखक के निजी जीवन से सम्बन्ध रखते थे। संस्मरणों में साधारण असाधारण बन जाता है, तथा इसमें अन्तरंगता की प्रधानता होती है। सांचों में ढले हुए पात्रों को आधार बनाकर अच्छे संस्मरण नहीं लिखे जा सकते। उन्होंने संस्मरण की कथा-भाषा और विन्यास को मौखिक कथा-परम्परा के निकट बताया।

डॉ. शशिशेखर तिवारी ने 'स्मृत और स्मृतिकार की पारस्परिकता' (महादेवी और अज्ञेय के विशेष संदर्भ में) आलेख पढ़ा। यह आलेख मूलतः क्लिष्ट और कृत्रिम भाषा में प्रस्तुत एक शोध-पत्र ही था। उनके अनुसार संस्मरण मानव की सृजनात्मक स्मृति-चेतना से जुड़ी एक ऐसी साहित्यिक विधा है, जिसमें मनुष्य के प्रत्यक्षीकरण, अभिव्यंजन और मौलिक चिन्तन के क्रमिक व्यापार नियोजित रहते हैं। उन्होंने महादेवी वर्मा और अज्ञेय के संस्मरणों को महान बताते हुए कहा कि इन दोनों के संस्मरणों में रचनाकारों का आत्मप्रक्षेपण हुआ है।

श्री प्रफुल्लचन्द ओझा 'मुक्त' ने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि साहित्य पहले मनुष्य की ओर फिर मनुष्य से व्यक्ति की तलाश है। रचनाकार को ''क्या लिखूं'' के बजाय ''क्या न लिखूं'' जानना अधिक जरूरी है।

डॉ. बच्चन सिंह ने अपने समापन भाषण में तीनों सत्रों को समेटने का प्रयास करते हुए कहा कि 'गोपन' इन विधाओं के रचनाकारों की नियति है। उन्होंने जीवनी लेखन की ओर विशेष ध्यान दिये जाने की जरूरत का उल्लेख करते हुए जीवनीकारों को सचेत किया कि वे अपने नायक को ''हीरो'' न बनने दें। उनका आग्रह था कि बनारसीदास के 'अर्द्धनायक' का उल्लेख हिन्दी साहित्य के इतिहास में होना चाहिए।

सम्पादक (हिन्दी पुस्तक अनुभाग)
प्रकाशन विभाग पटियाला हाउस
नई दिल्ली-110001

पुस्तक समीक्षा

वाचिक लय और गतिशील भाषिक रूप की कवितायें

केदार की कविताओं का संकलन 'आंका सूरज बांका सूरज' कई एक कारणों से ध्यान आकृष्ट करता है। केदार की कविताएं संभवतः सीधे संकलन के माध्यम से आई हैं। इसके पहले उनकी कविताएँ पत्रिकाओं के माध्यम से या किसी और माध्यम से पाठकों तक नहीं पहुंची हैं। इस संकलन में एक सौ पंद्रह कविताएँ और स्वामी प्रेम जहीर लिखित पाठकीय संकलित है।

केदार अपनी कविताओं में बड़े सहज हैं, ये कविताएँ भाव, बोध या विचार के स्तर पर कोई जाल नहीं रचतीं। इसीलिए सहज संप्रेष्य हैं। आजकल लिखी जा रही कविताओं में सहज अनुभूतियों एवं विचारों को गूढ़ बनाने की प्रवृत्ति बढ़ी है। छायावाद के दौर में जिस तरह कविता की विशेषता रहस्यात्मकता मान ली गयी थी, वैसे ही आजकल गूढ़ता। साधारण और सर्वसुलभ जानकारी को भी प्रायः कवि अमूर्त एवं अछूए बिंबों के माध्यम से व्यक्त करने में ही अपनी सफलता समझ रहे हैं। जीवन-जगत की ठोस सच्चाइयों और संबंधों को गूढ़ एवं अमूर्त बनाने के प्रयास में कविता जनमानस से कटती जा रही है। इस संदर्भ में यदि हम केदार की कविताओं का मूल्यांकन करें तो पाते हैं कि इनकी कविताओं में ऐसा व्यर्थ और अनगढ़ प्रयास नहीं है। इन कविताओं की सबसे बड़ी विशेषता भाषिक है। जीवन के विभिन्न अनुभवों और विचारों को गतिशील भाषिक काव्य रूप और परिचित बिंबों एवं प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त किया गया है।

जंगल शहर आया है
लाया है नदियों का हास
पत्तों का विलास
लाया है
शेरों की डौक
फुदकन खरगोश की
हिरण की तेज रफ्तार साथ लाया है
लौट जायेगा

ये कवितायें पठनीय हैं। छोटी-छोटी पंक्तियों और अनुप्रास में लिखि ये कविताएँ वर्तमान कविता की ऊब से मुक्त हैं। प्रायः कवितायें तुकांत हैं और उनमें एक वाचिक लय है। लय कविता का आंतरिक गुण होती है, और यह संरचना के आंतरिक हिस्से के रूप में ही है, कोई अतिरिक्त प्रयास नहीं किया गया है। संभवतः इसी कारण कुछ-कुछ मंच पर पढ़ी जाने वाली कविता का भी आभास देती हैं। वस्तुतः सहज और साधारण का फर्क ही इन कविताओं की विशेषता है। पढ़ने में साधारण लगने वाली ये कविताएँ साधारण नहीं हैं, उन्हें सहज बनाने में कवि का श्रम झलकता है।

कविताओं के विषय विविध हैं। इस विविधता को यूं ही रख दिया गया है। अच्छा होता कि संपादन करके इन कविताओं को वर्गीकृत करके क्रमवार दिया जाता। विविध भावों का एकल संकलन बोध को तोड़ता है। कुछ कविताएँ कविता विधा पर हैं। जैसे 'कविताओं का इस्पात' शीर्षक कविता में कवि ने कविता के सामाजिक महत्व को रेखांकित किया है–

राउरकेला की भट्ठियों में
तुम्हारी कविताओं का
बनाया जा सकता
इस्पात
जब भी चलेगी कोई रेलगाड़ी
उड़ेगा कोई विमान
उसके सुर, ताल और लय पर
तुम्हारे गीतों की छाप होगी।

– इन पंक्तियों के माध्यम से कवि कविता के व्यापक महत्व और आवश्यक यथार्थ से जुड़ता है। कविता नापंसद करने वालों के बारे में कवि ने स्पष्टतः कहा है – कुछ लोगों को हवा/पसंद नहीं आती/ज़ाहिर है/ऐसे लोग/कविताओं से कटेंगे/– तात्पर्य यह है कि जिन्हें जीवन से अरुचि है, उन्हें ही कविता पसंद नहीं आती।

आंका सूरज, बांका सूरज; कवि : केदार;
प्रकाशक: उदयाचल, राष्ट्रकवि दिनकर पथ,
राजेंद्र नगर, पटना – 800 016;मूल्य 38 रुपये ;

कवि ने स्वयं को निस्संग और वस्तुनिष्ठ घोषित किया है: कवि/तुम्हारा दोस्त नहीं होता/कवि/सबका हो सकता; /किसी एक का/कभी नहीं!'यह वस्तुनिष्ठता ही कवि को समाज के बड़े हिस्से विश्व से जोड़ने में सहायक होती है और वह एक ऐसी दुनिया की उम्मीद करता है। जब मांगने की जिल्लतें और खरीदगी की जहमतें नहीं रहेंगी/। कवि का आत्म विश्वास भावी दुनिया की मित्रता को व्यक्त करता है: एक समय/ऐसा भी आयेगा/जब आदमी, आदमी का दोस्त होगा।

'बड़ा हो जाने दो, जन को' शीर्षक कविता में कवि की विश्व नागरिकता उभरती है। लगातार सिमटती दुनिया से उसे कोई रोष नहीं, वह जनता के बड़े होने की बात करता है। इसी कविता में कवि ने विश्व सांस्कृतिक दार्शनिक हस्तियों की तलाश यात्रा भी की है। कवि को ऐसा आभास होता है कि अगामी दिनों में विश्व को संचालित करने का भार कलाकारों के कंधे पर आने वाला है। संकलन का सबसे कमजोर हिस्सा है–स्वामी प्रेम जहीर लिखित पाठकीय। यह पाठकीय कविता को समझने में विशेष मदद नहीं करता। स्वामी प्रेम जहीर अपनी बातें और अपना ज्ञान

प्रकट करने में ही व्यस्त रहतें हैं, ऐसे में संकलन की कवितायें उनके पाठकीय से छूट जाती हैं। प्रायः ऐसी टिप्पणियां कविता को समझने में सहायक भूमिका निभाती हैं और यही उनका उद्देश्य भी होना चाहिये। पर स्वामी प्रेम जहीर का पाठकीय कविताओं से नहीं जुड़ता और निरपेक्ष मंतव्य व्यक्त करता है।

अजय ब्रह्मात्मज

–द्वारा श्रीमती विभारानी
टालीगंज सैन्ट्रल गवर्नमेन्ट स्टाफ
क्वाटर्ज, ब्लाक न० 12, फ्लैट न० 124
टालीगंज, कलकत्ता

अहिन्दी भाषी कवियों के दो कविता-संकलन

1. **तराजू की अपनी जिन्दगी; कवि : मोतीलाल जोतवाणी ; प्रकाशक : सम्पर्क प्रकाशन, लाजपत नगर, नयी दिल्ली।**
   पृष्ठ संख्या : 48 ; मूल्य 15 रुपये।
2. **एक लहर सागर की ; कवि : गन्नु कृष्णमूर्ति; प्रकाशक : स्वयं कवि - पता – 10-9-106, उप डाकघर के पास, शिवाजी नगर, निज़ामाबाद-503001; पृष्ठ सं. 60; मूल्य 10 रुपये**

एक कलाकार की जिन्दगी भी आम तराजू के समान है। यह भाव प्रकट हुआ है मोतीलाल जोतवाणी के संग्रह की 'तराजू की अपनी जिन्दगी' शीर्षक कविता में जो संकलन की शीर्षक कविता भी है:–

"वह शीशे में बन्द
धर्म कांटा नहीं
जिसमें सोना चांदी तुलता है
वह तो खुली हवा में
एक आम तराजू है
जिसके दो पलड़ों में
जब तक दोनों चीजें पूरे मिक्दार में नहीं आती
वह खुद डावांडोल रहता है
उसका कोई तरफ नीचे भी गिरता है
कोई बात नहीं
अगर कलाकार की अपनी जिन्दगी भी ऐसी है।"

प्रस्तुत संकलन में कवि मोतीलाल जोतवाणी की 32 कविताएँ हैं। 'सिलसिला कोई नहीं' शीर्षक ग़ज़ल व 'फिर रात आ पड़ी है।' शीर्षक गीत को छोड़कर शेष कविताएँ छन्द मुक्त हैं।

सिन्धी भाषी होते हुए भी कवि का हिन्दी पर अच्छा अधिकार है। 'शनि देवता', 'कल का इन्तजार' 'यह तमाशा नहीं रहेगा', 'तराजू की अपनी ज़िन्दगी', 'तब और अब' तथा 'एक दफ्तर में बैठें' कविताएँ विशेष रूप से प्रभावित करती हैं। कई कविताओं में सम-सामयिक सामाजिक विसंगतियों पर व्यंग्यात्मक प्रहार किया गया है। वैयक्तिक संदर्भों की कविताएँ भी सामाजिक संदर्भों से जुड़ती प्रतीत होती हैं। □

एक लहर सागर की

कवि का हृदय एक सागर के समान होता है जिसमें कविता रूपी अनन्त लहरें उठती हैं। इन्हीं लहरों को एकत्र करके कवि गन्नु कृष्णमूर्ति ने सजाया है अपना काव्य संकलन – 'एक लहर सागर की'। प्रस्तुत काव्य संकलन को इस बात को ध्यान में रखते हुए पढ़ना होगा कि कवि तेलुगु भाषी हैं और उन्होंने हिन्दी की उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं की है। हिन्दी भाषा के प्रति अनन्य प्रेम ने ही उन्हें सृजन के लिए प्रेरित किया है।

तेलुगु भाषा में कवि के तीन कविता-संकलन प्रकाशित हो चुके हैं। हिन्दी में संभवतः यह प्रथम संकलन ही है। भूमिका में इस बात का उल्लेख कहीं नहीं हुआ है। संकलन आन्ध्र प्रदेश हिन्दी अकादमी की आर्थिक सहायता से प्रकाशित हुआ है।

संकलन में 18 कविताएँ हैं तथा कुछ क्षणिकाएं हैं। सभी कविताएं साधारण हैं और कोई विशेष प्रभाव पाठक के मन-मस्तिष्क पर नहीं छोड़ती। छन्दोबद्ध कविताओं में अनेक स्थानों पर छन्दों का निर्वाह ठीक ढंग से नहीं हुआ है। छन्दमुक्त कविताएँ अपेक्षाकृत अच्छी हैं। कुछ पक्तियां मर्मस्पर्शी बन पड़ी हैं। मिसाल के लिए देखिए 'रिक्शावाला' शीर्षक कविता की निम्नांकित पंक्तियां:–

"उसके बाप ने भी रिक्शा चलाया था
उसके दादा और परदादा ने भी।
वह भी रिक्शा चला रहा था
उसके बच्चे भी रिक्शा चलाएंगे
और उनके बच्चों के बच्चे भी
नहीं तो पेट कैसे पालेंगे?"

विश्वनाथ गुप्त
8, बाल भवन, गोहाना रोड,जीन्द,
(हरियाणा)-126102

आजकल का चन्दा

एक प्रति 2 रुपये; वार्षिक 20 रुपए; द्विवार्षिक 36 रुपए तथा त्रिवार्षिक 48 रुपए मात्र।

छात्रों, अध्यापकों और पुस्तकालयों के लिए चन्दे में 10 प्रतिशत की छूट। इसके लिए प्रमाण-पत्र भेजना आवश्यक है।

आजकल के नियमित ग्राहकों को प्रकाशन विभाग की 5 रुपये या अधिक मूल्य की पुस्तकें खरीदनें पर 10 प्रतिशत छूट दी जाती है।

चन्दे एवं विज्ञापन तथा पत्रिका न मिलने की शिकायत भेजने का पता-व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली। ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार : सम्पादक 'आजकल' (हिन्दी)
पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001, दूरभाष : 387069

रोटी तन्त्र

रोटी तन्त्र (कहानी संग्रह);
लेखक : सुशील राजेश ; प्रकाशक : दिशा प्रकाशन 138/16, त्रिनगर, दिल्ली - 110035; पृष्ठ संख्या: 96. मूल्य : 20 रुपये

कथा संग्रह' का शीर्षक 'रोटी तन्त्र' हो और रचनाकार युवा तो पाठक चौकन्ना हो जाता है। रोटी के लिये तरसते, संघर्षशील आदमी की हताशा, अपराध की ओर धकेले जाते विवश आदमी की पराजय, भीख मांगते गिड़गिड़ाते आदमी की दयनीयता और आदमी को गुलाम बनाने की खातिर, रोटी को औज़ार के रूप में इस्तेमाल करने वाली व्यवस्था की खौफनाक साजिश से साक्षात्कार की अपेक्षायें कथासंग्रह को शीघ्रातिशीघ्र पढ़ने के लिये उसे विवश कर देती हैं। दुर्भाग्य से विवेच्य कृति को पढ़ चुकने पर सिर्फ निराशा हाथ लगती है। यहां तक कि शीर्षक–कथा 'रोटी तन्त्र' भी पाठक के मन में मात्र जुगुप्सा पैदा कर रह जाती है। पाठक की अपेक्षाओं की निर्मम हत्या के लिये कथाकार पूर्णतः जिम्मेदार है। संग्रह की शेष नौ में से चार कहानियां 'आकाशवाणी' से साभार ली गई हैं। ये चारों निरामिष मामूली कहानियां–'दलदल', 'पीले उदास कल', 'हासिल बचा एक' और 'कटे परों का दर्द' – पढ़कर लगता है कि ये कहानियां न तो साहित्यिक आग्रहों के कारण लिखी गई हैं और न ही आकाशवाणी या पत्र-पत्रिकाओं की मांग के कारण; क्योंकि ये व्यावसायिकता व कलात्मकता किसी के भी निष्कर्ष पर खरी नहीं उतरती। दरअसल कहानी लिखने/छपने के लिये नहीं बल्कि, सृजन के सुख के लिये अथवा सृजनात्मक विवशता के तहत लिखी जानी चाहिये।

आलोच्य संग्रह की कुल दस कहानियों में से चार कहानियां 'असफल प्रेम' तथा तीन, 'असफल दाम्पत्य' की दास्तान सुनाती हैं। संग्रह के पलायनवादी हताश केन्द्रीय पात्र-रानू (पीले उदास कल), संजीव व शैला (दलदल), नवगीत (अंधेरे बन्द हाशिए), मन्नो (हिस्से), सरब (कमीज). अनु (कटे परों का दर्द), आदि-आदि - जिस रचना संसार में हमें ले जाते हैं,वह कथाकार के निराशावाद, पलायनवाद एवं रोमैंटिसिज्म को ही रेखांकित करता है। यह कतई स्वस्थ दृष्टिकोण नहीं है। इसमें संदेह नहीं कि हमारी व्यवस्था मनुष्य को मशीन में बदलना चाहती है किन्तु व्यवस्था के इस आक्रमण को कौन रोकेगा या रोकने की कोशिश करेगा? अगर रचनाकार यह बीड़ा उठाता है तो समकालीनता के संदर्भ में वह अप्रासंगिक हो जायेगा एवं रचनाकार कहलाने का अधिकारी भी नहीं रहेगा।

विनोद शर्मा

148 बी.एल.आई.जी. फ्लैट.
राजौरी गार्डन, नई दिल्ली-27.

(पृष्ठ 36 का शेष)

सवारी

अभागन की कल जाकर शादी भी तो करनी होगी। कहां से मैं क्या करूंगी। वह चिन्तित थीं।

और इस प्रकार मंगनू को नौकरी करनी ही है। मंगनू अजीब सी उदासी अनुभव करने लगा। पढ़ाई करके उसे आदमी नहीं बनना है। बन ही नहीं सकता। अपने निठल्ले बाप और अनपढ़ मां के लिए यही बस स्टैंड पर माइक लेकर चिल्लाना ही है –कि बी.पी.पी. 9899 गाड़ी पटना के लिए खुल रही है, जिन जात्रीगन को दरभंगा, मुजफ्फरपुर होकर पटना जाना है वे 9899 न. गाड़ी में बैठ जायं। गाड़ी खुलने ही वाली है।

मंगनू दोनों को लेकर चला आया।

अब मंगनू की बगल में मां और बहन बैठी है और मंगनू माइक्रोफोन पर बोलते-बोलते भी सोच रहा है कि अब हमें क्या करना चाहिये? क्या उपाय करें घर का? आज रात किसी तरह बीत जाय...।

उसे लग रहा था जैसे आज वह खुद ही बी पी पी 1595 न. बस बन गया है। □

आकाशवाणी
पटना-800001
(बिहार)

क्षणिका

– केदारनाथ कोमल

टूटी-फूटी शान हैं लोग
टुकड़े-टुकड़े नान हैं लोग

गिरगिट की मुस्कान हैं लोग
मुश्किल इम्तिहान हैं लोग

इक आंधी तूफान हैं लोग
भूतों भरा मकान हैं लोग

अनचाहे मेहमान हैं लोग
कूड़े की दूकान हैं लोग

चाहे जिधर नज़र दौड़ाएं
प्याले के तूफान हैं लोग।

– ई-97, सरोजिनी नगर,
नई दिल्ली-110023

वातायन

मैथिलीशरण गुप्त जन्म शताब्दी समारोह

"मैथिलीशरण गुप्त राष्ट्रीय साहित्य के भाल पर तिलक समान हैं"

–वेंकटरमन

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त बीसवीं शताब्दी के राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक जागरण के अग्रदूत थे। उन्होंने खड़ी बोली में राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत रचनाएं करके आधुनिक हिन्दी के विकास में अन्यतम योगदान किया। स्वातन्त्रय आन्दोलन के दौरान उनकी 'भारत भारती' ने राष्ट्रीय चेतना जगाने में महती भूमिका अदा की। उनकी इस उत्कृष्ट कृति ने जनमानस को आन्दोलित कर राष्ट्रीय भावनाओं का संचार किया।

इस वर्ष अगस्त में हमारे इस राष्ट्रकवि की जन्म शताब्दी का आरम्भ हुआ। इस उपलक्ष्य में उनके विशिष्ट योगदान के प्रति आभार प्रकट करने के लिये देश में जगह-जगह पर आयोजन किये जा रहे हैं जिनका क्रम पूरे वर्ष के दौरान चलता रहेगा। गत दिनों राजधानी तथा देश के कई अन्य नगरों में अनेक समारोह आयोजित किये गये। प्रमुख समारोह राष्ट्रीय संग्रालय में आयोजित किया गया जिसका उद्घाटन राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने किया। इस समारोह में उपराष्ट्रपति श्री वेंकटरमन ने भी अपने श्रद्धा के सुमन अर्पित किये।

राष्ट्रपति ने अपने उद्घाटन भाषण में कहा कि राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने हिन्दी को अपनी कविता में ढालकर अलंकृत किया और आजीवन उसके विकास के लिये कार्य करते रहे। इस संदर्भ में उन्होंने हिन्दी की वर्तमान असन्तोषजनक स्थिति पर खेद प्रकट करते हुए कहा कि आज भी हम हिन्दी को उचित सम्मान न देकर एक विदेशी भाषा को ही अपनी प्रतिष्ठा और विकास का प्रतीक बनाए हुए हैं।

राष्ट्रपतिजी ने कहा कि हमें अंग्रेजी श्रद्धा से नहीं मजबूरी में पढ़नी पड़ी है। अफसोस की बात है कि यह मजबूरी आज भी जारी है। उस समय हम गुलाम थे किन्तु आज गुलाम नहीं है फिर भी अंग्रेजी मालकिन बनी हुई है। उन्होंने इस बात पर दुख प्रकट किया कि संसद में हिन्दी बोलने वाले अच्छे सांसद नहीं माने जाते।

ज्ञानीजी ने कहा कि गुप्तजी ने आधुनिक हिन्दी के विकास के लिये जो कार्य किया वह ऐतिहासिक है, उन्होंने अपनें काव्य में न केवल समकालीन विचार-प्रवाह बल्कि राष्ट्रीयता की उदात्त भावनाओं को जो प्रखर अभिव्यक्ति दी और देशवासियों में जो राष्ट्रीयता जगाई, उसके कारण वह चिरस्मरणीय रहेंगे और राष्ट्र उनका कृतज्ञ रहेगा।

उपराष्ट्रपति श्री आर. वेंकटरमन ने मैथिलीशरण गुप्त जन्मशताब्दी समारोह के लिए गाठत राष्ट्रीय समिति के अध्यक्ष की हैसियत से हिन्दी में भाषण करते हुए कहा कि गुप्त जी राष्ट्रीय साहित्य के भाल पर तिलक के समान हैं। स्वतंत्रता से पूर्व और बाद में राज्य सभा के सदस्य के नाते उन्होंने एकता और आत्मबल को अपनी लेखनी से प्रस्फुटित किया। राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार कर उन्होंने भारतीय संस्कृति और एकता को मजबूत धागे में पिरोने का प्रयास किया।

इस अवसर पर मानव संसाधन विकास मंत्री श्री पी. वी. नरसिंह राव ने श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित पुस्तक 'राष्ट्रवाणी' का विमोचन भी क़िया।

शिक्षा और संस्कृति राज्यमंत्री श्रीमती कृष्णा साही ने उपस्थित साहित्यकारों सांसदों, बुद्धिजीवियों और मुख्य अतिथियों के प्रति आभार व्यक्त करते हुए कहा कि राष्ट्रकवि गुप्त जी का नाम देश के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में अंकित है। उनके चिन्तन और दर्शन से नई पीढ़ी का मार्ग प्रशस्त होता रहेगा।

साहित्य अकादेमी

साहित्य अकादेमी के आयोजन की अध्यक्षता सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री जैनेन्द्र कुमार ने और संचालन श्री गुलशेर खां शानी ने किया।

इस अवसर पर अकादमी के सचिव प्रो० इन्द्र नाथ चौधुरी ने अपने स्वागत भाषण में कहा कि गुप्त जी ने भारत के नव-निर्माण का सपना देखा और नैतिक मानदंडों की पुनः स्थापना के लिये ही अपने कृतित्व को प्रस्तुत किया। उन्होंने यह सूचना भी दी कि साहित्य अकादमी गुप्त जी के जन्म-शताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य में भारतीय साहित्य योजना के अन्तर्गत एक विनिबन्ध तैयार करा रही है जिसे लिखने का अनुरोध वरिष्ठ साहित्यकार श्री स.ही वात्स्यायन 'अज्ञेय' से किया जा रहा है।

प्रमुख हिन्दी कवि डा. शिवमंगल सिंह सुमन ने अपने वक्तव्य में गुप्तजी की काव्य-प्रतिभा का 20वीं. सदी के राष्ट्रीय पुनर्जागरण के संदर्भ में मूल्यांकन किया। उन्होंने कहा कि



बांये से दायें गुलशेर खां शानी, शिवमंगल सिंह सुमन, जैनेन्द्र और डा. इन्द्रनाथ चौधुरी

मैथिलीशरण गुप्त राष्ट्रीय साहित्य के स्रष्टा उन पांच प्रमुख हस्ताक्षरों में से एक हैं जिन्होंने राष्ट्रीयता एवं सांस्कृतिक पुनर्जागरण में महती भूमिका अदा की है। उन्होंने जिन चार अन्य विभूतियों का उल्लेख किया वे हैं—बंकिम, रवीन्द्र, सुब्रहमण्यम और प्रेमचन्द।

इस अवसर पर 'कौमुदी' के तत्वावधान में श्री रघुवीर सहाय के निर्देशन में गुप्तजी की प्रमुख कविताओं की अभिनयात्मक प्रस्तुति की गई।

अपने अध्यक्षीय भाषण में श्री जैनेन्द्र कुमार ने कहा कि "मेरे चित्त में छुटपन से ही गुप्त जी का एक विराट, भव्य चित्र रहा है। मैंने 9-10 वर्ष की आयु में 'जयद्रथ वध' और 'भारत-भारती' दूर-दराज के जंगल में रहकर पढ़ा था। मैंने उनमें यह पाया कि समूचा राष्ट्रीय जीवन अनेकानेक आयामों में उनके काव्य में समाविष्ट हुआ है।

वर्तमान जटिल राष्ट्रीय स्थितियों की ओर ध्यान दिलाते हुए जैनेन्द्र जी ने कहा कि आज हमें इस प्रश्न पर विचार करना चाहिए कि हमारी राष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद का आधार क्या है? आज के समय में रवीन्द्र और मैथिलीशरण गुप्त अत्यन्त प्रासंगिक हैं। इन दोनों महाकवियों ने मानव की एकता की दिशा में वह आधार प्रस्तुत किया जिस पर राष्ट्र की अस्मिता निर्भर करती है।

'आजकल' की काव्य संध्या

'आजकल' के तत्वावधान में भी गत 12 अगस्त को एक काव्य-संध्या आयोजित की गई जिसकी अध्यक्षता प्रमुख हिन्दी कवि एवं प्रकाशन विभाग के निदेशक डा. श्यामसिंह शशि ने की। काव्य गोष्ठी का संचालन कादम्बिनी के उप सम्पादक श्री सुरेश नीरव ने किया। इस अवसर पर डा. शशि ने गुप्त जी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डाला और उपस्थित कवियों एवं श्रोताओं को प्रकाशन विभाग की उपलब्धियों से परिचित कराया। गोष्ठी में मुख्यतः युवा कवियों ने भाग लिया जिन्होंने राष्ट्रीय स्वर की रचनाएं प्रस्तुत कीं।

इस काव्य संध्या में स्थानीय कवियों के अतिरिक्त दिल्ली से बाहर से आये कुछ कवियों ने भी भाग लिया। गोष्ठी में भाग लेने वाले कवियों के नाम इस प्रकार हैं—मधुर शास्त्री, डा. श्यामसिंह शशि, डा. जयपाल तरंग, केदारनाथ कोमल, सुरेश नीरव, राजेन्द्र राजन (सहारनपुर), सौरभ, सत्यपाल सक्सेना (गुड़गांव), अजय प्रताप भामड़ी, मधु मिश्रा, विभा मिश्रा (वाराणसी), शिवानी, योगेन्द्रदत्त शर्मा, राजेन्द्र उपाध्याय, मोहन चन्द्र मंटन और नरेन्द्र सिन्हा।

वाराणसी में वत्सल निधि का आयोजन

सांस्कृतिक राजधानी वाराणसी में वत्सल निधि के तत्वावधान में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का तीन दिवसीय जन्मशती समारोह अपने ढंग का विशिष्ट आयोजन रहा है। छः अगस्त को मुरारीलाल मेहता प्रेक्षागृह में समारोह का उद्घाटन करते हुए प्रख्यात वयोवृद्ध विद्वान पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी ने कहा कि राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त खड़ी बोली कविता के प्रवर्तक थे। गुप्तजी की ब्रजभाषा की कविताओं तथा उनके अनुवादों पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा कि जब गुप्तजी कविता के माध्यम से लोगों के समक्ष आये तब उनके काव्य के संक्रमण काल का अन्तिम सोपान था। हिन्दी गद्य का जो रूप भारतेन्दु ने दिया, गुप्तजी ने उसे आगे बढ़ाया।

समारोह की अध्यक्षता करते हुए वयोवृद्ध हिन्दी सेवी तथा भूतपूर्व संसद सदस्य श्री गंगाशरण सिंह ने राष्ट्रकवि गुप्तजी के अनेक संस्मरण सुनाये।

प्रख्यात साहित्यकार श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने अपने स्वागत भाषण में कहा कि गुप्त का सम्मान राष्ट्रीयता का सम्मान है। हिन्दी और राष्ट्रीयता एक भावना से आपस में जुड़े है। इससे गुप्तजी ने अपने आपको जोड़ा। आज एक राष्ट्र, एक भाषा के साथ राष्ट्रीयता की भावना को विस्मृत न कर ही हम राष्ट्रकवि गुप्तजी के प्रति सच्ची श्रद्धाजंलि अर्पित कर सकते हैं।

समारोह में श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए श्रीनारायण चतुर्वेदी।



राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जन्म शताब्दी के दूसरे तथा तीसरे दिन के समारोह में 'भारतीय घर' तथा 'साहित्य तथा देश' संबंधी व्याख्यानमाला का आयोजन किया गया। समारोह की सफलता के लिए महीयसी महादेवी वर्मा ने अपना लिखित संदेश प्रेषित किया था। □

गोपाल शंकर व्यास
पराड़कर संग्रहालय, के–31-59, काल भैरव, वाराणसी–221001

हिन्दी अकादमी

राजधानी में प्रमुख आयोजन हिन्दी अकादमी के तत्वावधान में सम्पन्न हुआ। इस अकादमी ने 23 सितम्बर से 29 सितम्बर 86 तक हिन्दी सप्ताह का आयोजन किया। सप्ताह के आरम्भ में 23 सितम्बर, 86 को त्रिवेणी सभागार में हिन्दी हम सब की विषय पर एक संगोष्ठी आयोजित की गई। विषय के अनुरूप यह संगोष्ठी पारस्परिक तालमेल, सहयोग और सौहार्द्र की भावना के उद्देश्य से आयोजित की गई। यह संगोष्ठी हिन्दी के वरिष्ठ लेखक और साहित्यकार श्री विष्णु प्रभाकर जी के सान्निध्य में आयोजित की गई जिसकी अध्यक्षता प्रसिद्ध पत्रकार श्री अक्षय कुमार जैन ने की। गोष्ठी में प्रमुख रूप से प्रो० विजयेन्द्र स्नातक, डा० गोपाल शर्मा, डा० मलिक मोहम्मद तथा श्री हिमांशु जोशी ने अपने विचार प्रस्तुत किये।

इस वर्ष हिन्दी अकादमी द्वारा सप्ताह के अन्तर्गत मैथिलीशरण गुप्त जन्म शताब्दी समारोह से संबधित दो दिवसीय कार्यक्रम का विशेष रूप से आयोजन किया गया जिसमें जाने-माने लेखकों, साहित्यकारों और विद्वानों द्वारा मैथिलीशरण गुप्त जी के प्रति श्रद्धांजली अर्पित की गई। यह समारोह वरिष्ठ लेखक और विचारक श्री जैनेन्द्र कुमार के सान्निध्य में आयोजित किया गया जिसकी अध्यक्षता डा० नगेन्द्र ने की। इस समारोह में श्री गोपाल प्रसाद व्यास ने राष्ट्र कवि मैथिलीशरण से संबंधित अपने संस्मरण, प्रस्तुत किये। राष्ट्र कवि के प्रति श्रद्धा-सुमन अर्पित करने वालों में श्री विष्णु प्रभाकर, प्रो० विजयेन्द्र स्नातक, डा० प्रभाकर माचवे तथा श्री कन्हैयालाल नन्दन के नाम उल्लेखनीय हैं। कार्यक्रम के अन्त में मैथिलिशरणजी की कृतियों पर आधारित एक नृत्य नाटिका का मंचन किया गया। आयोजन के दूसरे दिन दिनांक 25 सितम्बर, 1986 को दो सत्रीय विचार गोष्ठी आयोजित की गई जिसमें प्रमुख हिन्दी लेखकों एवं विद्वानों ने अपने आलेख प्रस्तुत किये।

सप्ताह का समापन दिनांक 29 सितम्बर 86 को संकल्प समारोह से किया गया जिसमें हिन्दी प्रेमियों, विद्वानों, लेखकों, शिक्षकों, विद्यार्थियों व अन्य लोगों के द्वारा अपने दैनिक कार्यों में अधिक से अधिक हिन्दी को अपनाने का संकल्प किया गया।

-नरेन्द्र गुप्ता, नई दिल्ली

राष्ट्रीय कवि सम्मेलन

मैथिलीशरण गुप्त जन्मशताब्दी समारोह की राष्ट्रीय समिति के कार्यक्रमानुसार गत 5 अगस्त को हिन्दी अकादमी, दिल्ली के तत्वावधान में फिक्की सभागार, नई दिल्ली में एक राष्ट्रीय कवि सम्मेलन का आयोजन हुआ। इस कवि सम्मेलन में लगभग 15 प्रमुख कवियों ने दिवंगत राष्ट्रकवि के प्रति अपनी काव्य-श्रद्धांजलि प्रकट की।

हिन्दी अकादमी दिल्ली द्वारा गत 5 अगस्त को आयोजित राष्ट्रीय कवि सम्मेलन में लोकसभा अध्यक्ष श्री बलराम जाखड़ (बांये से पांचवे) और कार्यकारी पार्षद श्री कुलानंद भारतीय (बांये तीसरे)



इस अवसर पर बोलते हुए लोकसभा के अध्यक्ष श्री बलराम जाखड़ ने गुप्तजी को अतीत के गौरव का प्रेरक कवि बताते हुए वर्तमान भारत की एकता और अखंडता के लिये कवियों का आहवान किया और उनसे लेखनी को मजबूत करते हुए देश को एक सूत्र में जोड़ने के गीत लिखने का अनुरोध किया। मुख्य कार्यकारी पार्षद श्री जगप्रवेश चन्द्र ने उन्हें भारत के निर्माण के लिये कार्य करने वाला महान् कवि बताया और श्री कुलानन्द भारतीय ने मैथिली शरण गुप्त की कृतियों की चर्चा करते हुए उन्हें जन-जागरण के अमर गायक के रूप में याद किया।

सम्मेलन में जिन प्रमुख कवियों ने भाग लिया उनके नाम इस प्रकार हैं:– गोपालदास नीरज, सोम ठाकुर, डा. शेरजंग गर्ग, भारत भूषण, देवराज दिनेश, कन्हैया लाल नन्दन, रमानाथ अवस्थी, मधुर शास्त्री, मेघराज मुकुल, डा. कुंवर बेचैन आदि। □

-रामकुमार शर्मा
आर. जैड. 13 एच. धर्मपुरा कालोनी, नजफगढ़, नई दिल्ली।

पटना में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का स्मरण

वह रस्म अदायगी क्षण नहीं था जब 13 अगस्त 86 को पटना के चैम्बर आफ कामर्स हाल में आयोजित राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त शताब्दी समारोह का उद्घाटन करते हुए बिहार के राज्यपाल श्री पी० वेंकटसुब्बैया ने यह कहा कि मेरी हिन्दी पूज्य मैथिलीशरण जी की देन है। मेरा सौभाग्य रहा कि मैं उनके साथ राज्सभा का सदस्य रहा और सदन में तथा उसके बाहर भी उनके मुंह से अनेक कविताएं सुनने का मौका मिला। वे मुझे हिन्दी बोलने हेतु प्रोत्साहित किया करते थे।



राष्ट्रकवि के चित्र पर माल्यार्पण करते हुए बाबू गंगाशरण सिंह

अध्यक्ष पद से बोलते हुए वयोवृद्ध साहित्यकार बाबू गंगाशरण सिंह के अनुसार हिन्दी कविता में मैथिलीशरण गुप्त राष्ट्रीयता के प्रथम उद्घोषक थे। जब तक 'भारत-भारती' का एक भी पन्ना रहेगा, लोग उन्हें याद रखेंगे।

प्रारम्भ में पटना के नागरिकों की ओर से महापौर श्री कृष्णानन्दन सहाय ने सभा को आश्वस्त किया कि यह नगर राष्ट्रकवि शताब्दी को मूर्त देने में पीछे नहीं रहेगा।

समारोह के संयोजक श्री शंकरदयाल सिंह ने शताब्दी समारोह के कार्यक्रमों पर प्रकाश डालते हुए बताया कि पटना से 'दद्दा' का बड़ा लगाव था। अतः यहां उनका उपयुक्त स्मारक बनाया जाएगा।

-अजातशत्रु
द्वारा पारिजात प्रकाशन, डाक बंगला रोड़, पटना

प्रदर्शनी

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

वाराणसी में अभी वत्सल निधि के तत्वावधान में आयोजित त्रिदिवसीय गुप्त जन्म शती समारोह की गूंज समाप्त भी नहीं हुई थी कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के भारत कला भवन में गत वर्ष पर्यन्त चलने वाले राष्ट्रकवि जन्मशती समारोह का शुभारम्भ हुआ। काशी में स्व० मैथिलिशरण गुप्त से संबंधित कार्यक्रमों के आयोजन के पीछे एक मुख्य कारण है उनकी और स्व० रायकृष्णदास जी की गहरी मित्रता। इसका शुभारम्भ कला भवन में अयोजित 'साहित्यिक यात्रा' शीर्षक चित्र प्रदर्शनी थी जिसका शुभारंभ 30 अगस्त, 1986 को विश्वविद्यालय, के कुलपति ने किया। इसमें 'दद्दा' के पत्र, चित्र, रचनायें, जेल जीवन के वस्त्र आदि रखे गए थे। अधिकांश चिट्ठियां रायकृष्णदास जी के नाम थीं जिनमें गुप्त जी की उन्मुक्तता और सहजता की छाप थी।

प्रदर्शनी उद्घाटन के तत्काल बाद कला भवन के सभागार में व्याख्यान माला का आयोजन हुआ। अमृतलाल नागर का आना तय था किन्तु नहीं आये। इसलिये प्रथम वक्ता का भार प्रभाकर माचवे पर आ पड़ा। माचवे जी ने अपना संस्मरणात्मक व्याख्यान प्रस्तुत किया। 'दद्दा' ने उस समय कविता में हाथ लगाया जब कविता का अर्थ समस्या पूर्ति होता था, कविता ऐश की चीज थी। ग्राम्य-जीवन के बारे में लिखना भी उस समय आसान नहीं था। उमर खय्याम की रुबाइयों के अनुवाद तथा काबा-कर्बला की रचना से स्पष्ट है कि गुप्तजी उदारमना थे। गुप्तजी की रजनाओं के संदर्भ में माचवे जी ने स्वतंत्रता पूर्व देश की विभिन्न भाषाओं के रचे गये साहित्य की विवेचना की। दूसरे वक्ता डा० शिवप्रसाद सिंह थे। समारोह के आरम्भ में कुलगीत वंदना के पश्चात् डा० प्रदीप दीक्षित ने 'यशोधरा' के अशों का सस्वर पाठ किया। संचालन ओमप्रकाश टण्डन ने किया। □

-सूर्यकान्त त्रिपाठी,
पी० आई० बी, तीसरी मंजिल, पिपलानी कटरा, कबीर मार्ग,
वाराणसी–221001



24 सितम्बर को हिन्दी अकादमी दिल्ली द्वारा आयोजित समारोह को संबोधित करते हुए श्री जैनेन्द्र कुमार।

हिन्दी दिवस समारोह

चौदह सितम्बर को देश हिंदी दिवस के रूप में मनाता है। इस उपलक्ष्य में पूरे एक सप्ताह तक जगह–जगह पर सभाएं, गोष्ठियां और अन्य कार्यक्रमों का आयोजन कर हिंदी के प्रचार-प्रसार पर बल दिया जाता है। अन्य वर्षों की भांति इस वर्ष भी जगह-जगह पर विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम आयोजित कर लोगों को अपने वैयक्तिगत, सामाजिक और सरकारी काम-काज में हिंदी का उपयोग करने के लिए प्रेरित किया गया।

इस वर्ष के समारोहों की एक प्रमुख शिषता यह रही कि हिन्दी सप्ताह के साथ-साथ राष्ट्र कवि मैथिलिशरण गुप्त की जन्मशती से सम्बन्धित कार्यक्रम भी अयोजित किये गये।

रुड़की विश्वविद्यालय

विश्वविद्यालय तकनीकी एवं इंजीनियरिंग शिक्षा की प्रमुख संस्था रुड़की विश्वविद्यालय में आयोजित 'हिन्दी दिवस' समारोह में मुख्य अतिथि के पद से हिन्दी के प्रख्यात कवि एवं नाटककार डा० रामकुमार वर्मा ने कहा कि आज देश में सर्वत्र अंग्रेजी की लहर दौड़ रही है जो शासन की गलत भाषा-नीति का शेष है। राष्ट्रभाषा का महत्व विदेश जाकर पता चलता है। असल में अंग्रेजों ने अग्रेंजी को इतना गहरा रोपा है कि उसका संस्कार हमसे छूट नहीं रहा है। डा० वर्मा ने पूछा कि बिना राष्ट्र भाषा के स्वतंत्रता कैसी? संस्कृति का योगदान नहीं तो आजादी का क्या मूल्य?

डा० वर्मा ने स्पष्ट शब्दों में जोर देकर कहा कि 'हिन्दी दिवस' अंग्रेजी के संस्कार से मुक्ति पाने के संकल्प का दिन होना चाहिए। वास्तव में हम राष्ट्रभाषा का अपमान स्वयं कर रहे हैं चूंकि हम राष्ट्रभाषा हिन्दी पर गर्व नहीं कर सकते।

समारोह के अध्यक्ष कुलपति डॉ० भरतसिंह ने बताया कि उच्च पदों पर भर्ती चूंकि अंग्रेजी माध्यम से होती है, अत: हिन्दी शिक्षण का माध्यम नहीं बन पा रही है। जब शासन का लोक सेवा आयोग तथा बड़े-बड़े उपक्रम हिन्दी को स्वीकार कर लेगें तो हिन्दी पनपेगी।

-डा० योगेन्द्र नाथ शर्मा 'अरुण', रुड़की

स्टेट बैंक आफ बीकानेर एंड जयपुर

स्टेट बैंक आफ बीकानेर एण्ड जयपुर (दिल्ली अंचल) द्वारा हिन्दी मानसेवी प्रतिनिधियों का सम्मेलन गत 13 अगस्त को बैंक की पश्चिम विहार, नई दिल्ली शाखा में आयोजित किया गया। इसमें हरियाण, पंजाब, तथा दिल्ली की शाखाओं के 32 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। सम्मेलन का उद्घाटन डा० श्यामसिंह शशि, निदेशक प्रकाशन विभाग भारत सरकार ने किया। इस अवसर पर बोलते हुए डा० शशि ने भारत सरकार की राजभाषा नीति की विस्तार से व्याख्या की और कहा कि हिन्दी का भारत में ही नहीं, विश्व के अनेक देशों में अत्याधिक सम्मान है। उन्होंने हिन्दी की महत्ता पर जोर देते हुए कहा कि जिस प्रकार हम जन्मदायिनी 'मां' का सम्मान करते हैं वैसा ही आदर मातृभाषा 'हिन्दी' को दें। □

सभा को संबोधित करते हुए डा. श्याम सिंह शशि





ओबरा

मिर्ज़ापुर जिले के औद्योगिक नगर ओबरा में 'हिन्दी सप्ताह' के समापन पर आधारित एक समारोह में काशी विद्यापीठ के कुलपति डा० विद्या निवास मिश्र ने हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए सभी का आवाहन किया। समारोह की अध्यक्षता ओबरा विद्युत परियोजना के महाप्रबन्धक श्री भुवन भूषण शर्मा ने की।

डा० मिश्र ने कहा कि हिन्दी केवल एक भाषा ही नहीं वरन् हमारी संस्कृति भी है। हर समाज और देश की एक राष्ट्रभाषा है। लेकिन अपने देश में हिन्दी को एक विवाद का विषय बना दिया गया है। यह एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है।

-हरिशंकर प्रसाद, ओबरा

श्रीडूंगरगढ़

श्रीडूंगरगढ़ (15 सितम्बर), राजस्थान की साहित्यिक संस्था राष्ट्रभाषा हिंदी प्रचार समिति की ओर से एकदिवसीय 'हिंदी दिवस समारोह' का आयोजन किया गया।

स्थानीय पुस्तकालय-सभागार में सुबह सुप्रसिद्ध रंगकर्मी श्री विद्यासागर आचार्य की अध्यक्षता में 'हिंदी कहां थोपी जा रही है?' विषयक विचार गोष्ठी में बोलते हुए समारोह के मुख्य अतिथि डॉ० पुरुषोत्तम आसोपा ने हिन्दी को देश की आत्मा बताते हुए कहा कि हिन्दी में अन्य भाषाओं के सशक्त शब्दों को अंगीकार करने की अद्भुत क्षमता है और इसी गुणवत्ता के कारण हिंदी का प्रवेश ज्ञान-विज्ञान एवं तकनीकी के सभी क्षेत्रों में स्वतः हो रहा है। आपने बताया कि अभी हिन्दी को जीवन के उन क्षेत्रों में पहुंचना है जहां इसका विरोध हो रहा है। गोष्ठी में श्री बैजनाथ पंवार ने कहा कि हिन्दी का विरोध राजनीतिपरक है और हमे इसके प्रति सचेत रहना चाहिए।

अध्यक्षीय भाषण देते हुए श्री विद्यासागर आचार्य ने कहा कि हिंदी का विरोध वे लोग कर रहे हैं, जो चाहते हैं कि क्षेत्र तोड़े जाएं या उन्हें खतरा लग रहा है कि इससे क्षेत्रीय भाषा दबेगी। आपने कहा कि हमें क्षेत्रीयता से ऊपर राष्ट्रीयता के प्रति समर्पित रहना है। यही राष्ट्र एवं राष्ट्रभाषा के प्रति हमारा सम्मान होगा।

मदन सैनी, श्री डूंगरगढ़



सम्मान

राष्ट्रपति भवन में गत 29 सितम्बर को पंजाब हिन्दी साहित्य अकादमी की ओर से हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि श्री केदार नाथ कोमल का सम्मान किया गया। चित्र में राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह श्री कोमल को सम्मानित करते हुए

श्री कोमल को इस वर्ष 'सारस्वत सम्मान' से भी सम्मानित किया गया। यह सम्मान साहित्य संगम, जनकपुरी नई दिल्ली ने दिया। साहित्य संगम की ओर से हिन्दी दिवस के अवसर पर डा. तारकनाथ बाली, श्रीमती आशा रानी व्होरा, डा. ओमप्रकाश शर्मा 'प्रकाश' और श्री जवाहरलाल भारत भी सम्मानित किये गए। □

हिन्दुस्तान कापर लिमिटेड

राजस्थान में खेतड़ी नगर में हिन्दुस्तान कापर लिमिटेड की इकाई खेतड़ी ताम्बा परियोजना में 15 सितंबर से 20 सिंतबर तक हिन्दी सप्ताह मनाया गया। इस अवसर पर परियोजना के राजभाषा विभाग के तत्वावधान में कर्मचारियों, छात्रों तथा महिलाओं के लिए अनेक प्रतियोगिताऐ आयोजित की गईं। 19 सितम्बर को वयोवृद्ध पत्रकार श्री कुमार जैन की विशेष वार्ता हुई। 20 सितंबर को हिन्दी सप्ताह के समापन समारोह में विभिन्न प्रतियोगिताओं के विजेताओं को पुरस्कार प्रदान किए गए तथा श्रीराम कलाकेन्द्र नई दिल्ली की ओर से केशव की कहानी 'खच्चर' और फणीश्वर नाथ 'रेणु' की कहानी 'रसप्रिया' का नाट्य रूपान्तरण प्रस्तुत किया गया।

—सुभाष चन्द्र, 'सत्य', दिल्ली

हिन्दी का उद्देश्य यही है, भारत एक रहे अविभाज्य,
यों तो रूस और अमरीका, जितना है उसका जन राज्य।
बिना राष्ट्रभाषा स्वराष्ट्र की, गिरा आप गूंगी असमर्थ,
एक भारती बिना हमारी भारतीयता का क्या अर्थ।

-राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त

इलाहाबाद में नवगीत अर्द्धशती समारोह



समारोह को संबोधित करते हुए श्री शंभुनाथ सिंह।

—डा० शम्भू नाथ सिंह

विगत 12-25 अगस्त को इलाहाबाद में स्व० उमाकान्त मालवीय की स्मृति में दो दिवसीय नवगीत अर्द्धशती समारोह का आयोजन हुआ। चौबीस अगस्त को प्रयाग संगीत समीति के मेहता प्रेक्षागृह में आयोजित इस समारोह में उद्घाटन एवं ग्रन्थ विमोचन सत्र सम्पन्न हुआ। इस सत्र की अध्यक्षता हिन्दी कवि एवं आलोचक डा० जगदीश गुप्त ने की तथा समारोह का उद्घाटन प्रख्यात साहित्यकार डा० रामकुमार वर्मा ने किया। अपने उद्घाटन भाषण में डा० वर्मा ने कहा कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद हिन्दी कविता ने पश्चात्य साहित्य के निरर्थक अनुकरण के फलस्वरूप जो नया मोड़ लिया वह चिन्ताजनक रहा है। ऐसी छन्दमुक्त कविता इस अर्थ में वास्तविक कविता नहीं है। वह श्रोताओं और पाठकों को अपनी और आकृष्ट करने में असमर्थ रही है। कविता का प्रारम्भ छन्द और लय से हुआ था। अतः जो वास्तविक कवि होगा वह छन्द—लय को छोड़ नहीं सकता। नवगीत छान्दसिक और लयात्मक काव्य है साथ ही वह गीत भी है। गीत में गेयता एवं संक्षिप्तता का होना आवश्यक है। नवगीत ने गीत के इस वैशिष्ट्य को कायम रखते हुए पारम्परिक गीतों की संकीर्ण सीमा का विस्तार किया है। अतः वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना में भीगा नवगीत आज की कविता के रूप में सक्रिय एवं सचेत है।

"इस अवसर पर डा० कुवंर चन्द्र प्रकाश सिंह ने चार सद्यः प्रकाशित नवगीत काव्य—संकलनों का विमोचन किया जिनके नाम है—डा० शम्भुनाथ सिंह कृत **'वक्त की मीनार पर'** डा० उमाशंकर तिवारी कृत **'धूप कड़ी है'**—, अनूप अशेष कृत **'वह मेरे गाँव की हँसी थी'** तथा रामसेंगर कृत **'शेष रहने के लिए'**।

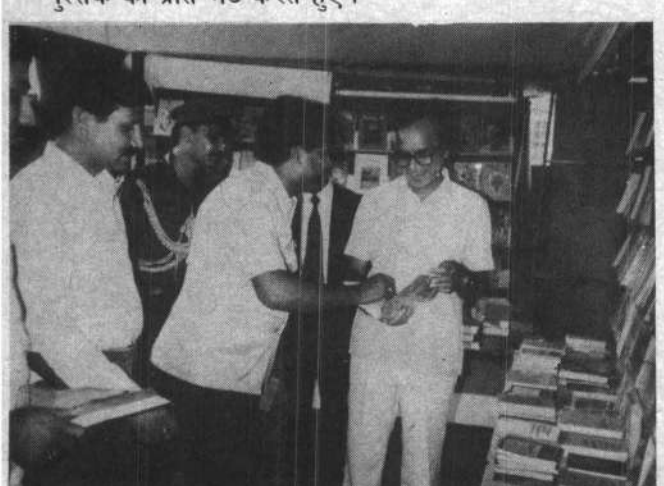
अपने अध्यक्षीय भाषण में डा० जगदीश गुप्त ने कहा कि विसंगतियों के गीत को नवगीत कहा जा सकता है। काव्य की अनेक विधायें होती हैं और कवि किसी एक विंधा में ही अपने को सीमित न कर के यदि अपनी रचना को समर्थ बनाने के लिए अन्य विधाओं का सहारा लेता है तो ऐसा करना उचित ही है। इस दृष्टि से नवगीत को नई कविता का निषेध नहीं माना जा सकता। आज भी नई कविता है और रहेगी..... बाहर से आई प्रवृत्ति कहकर उसे हटाया नहीं जा सकता। नवगीत नई कविता धारा के भीतर की सार्थक दशा है। रचना में समन्वय की दिशा होनी चाहिये। कविता सौन्दर्य के साथ—साथ जीवन में सत्य की गहराई एवं लयात्मकता की पकड़ है। लयात्मकता महत्वपूर्ण है और वह छन्द में तो होती ही है, अर्थ में भी होती है।

रात्रि में9 बजे से उसी प्रेक्षागृह में डा० कुँवर चन्द्र प्रकाश सिंह की अध्यक्षता में नवगीत-पर्व (नवगीत कवि सम्मेलन) सत्र का आयोजन हुआ।

पच्चीस अगस्त को प्रातः 9 बजे से हिन्दुस्तानी एकेडमी के सभागार में डा० ओम प्रभाकर की अध्यक्षता में विचार गोष्ठी का प्रारम्भ हुआ जिसका विषय था "समकालीन हिन्दी कविता में जनबोध" गोरखपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के रीडर डा० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव ने अपने आलेख का पाठ कर के विषय-प्रर्वतन किया। इस विषय पर अनेक विद्वानों एवं कवियों ने अपने विचार व्यक्त किये। □

सी० 14/160 बी—2, सोनिया, वाराणसी।

नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा श्रीनगर में गत 4 से 14 अगस्त तक एक पुस्तक मेले का अयोजन किया गया जिसमें भारत सरकार के प्रकाशन विभाग ने भी अपना स्टाल लगाया। चित्र में विभाग के व्यापार अधिकारी ए० के० परवन्दा जम्मू एवं कश्मीर के राज्यपाल श्री जगमोहन को 'ट्रायल आफ तिलक' नामक पुस्तक की प्रति भेंट करते हुए।



राष्ट्रीय एकता पर आधारित नाटक

कोख और बाढ़ का पानी

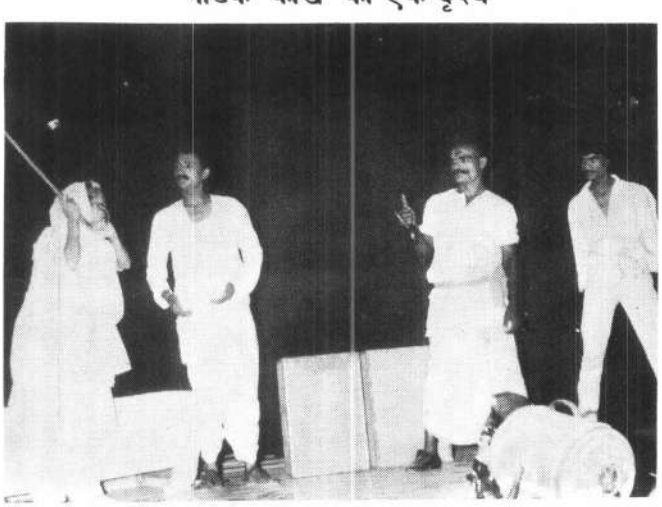
राष्ट्रीय एकता आज की सब से बड़ी आवश्यकता है। आज हम सब आंतकवादी और विघटनकारी शक्तियों से जूझ रहें हैं, इसका महत्व और भी बढ़ जाता है। राष्ट्रीय एकता की भावना को पुष्ट करने और विघटनकारी कतिपय स्वार्थी लोगों से सर्तक रहने के उद्देश्य से वाराणसी के मुरारी लाल मेहता प्रेक्षागृह में गोकुल आर्ट द्वारा राष्ट्रीय एकता पर आधारित दो नाटकों 'कोख' और 'बाढ़ का पानी' का मंचन किया गया। इस कार्यक्रम की अध्यक्षता सांसद श्री रत्नाकर पाण्डेय ने की। 'कोख' अमृत लाल मदान की एक अप्रतिम कृति है जिसमें हिन्दू-सिख सम्बधों का सूक्षतम विश्लेषण किया गया है।

'बाढ़ का पानी' डा० शंकर शेष के उन चर्चित नाटकों में से एक है जिसमें सामाजिक विषमता उजागर करने की कोशिश की गई है। मलिन बस्ती के लोगों से गांव के ठाकुर पंडित और अन्य सवर्ण जाति के लोग नफरत करते हैं और उन्हें हेय समझ कर उनका अपमान करते हैं। पर गांव के बाढ़ में फंस जाने पर मलिन बस्ती के लोग ही उन्हें अपने टीले पर आसरा देते हैं। एक साथ रहते हैं और एक ही थाली में खाते हैं। नाटककार ने इस नाटक में ऐसे समाज की कल्पना की है जो विभेद पर नहीं समता पर आधारित होगा।

अम्बरीष सक्सेना निर्देशित इस नाटक में मोती लाल गुप्ता और रश्मि गुलाटी ने प्रभावित किया। नरेन्द्र गुप्ता अति अभिनय के शिकार थे। अन्य कोई भी कलाकार उल्लेखनीय नहीं रहा। □

-अतुल मिश्र
सी 6-118 ए बागवरिपार सिंह, चेतगंज, वाराणसी

नाटक 'कोख' का एक दृश्य





क्षितिज का नया नुक्कड़ प्रदर्शन 'हाथी मरा नही है'

हिन्दी के मौलिक नाटकों को जनसामान्य में रुचिकर बनाने की दिशा में दुर्ग म. प्र. की नाट्य संस्था क्षितिज रंग शिविर पिछले एक दशक से प्रयासरत है। नुक्कड़ नाटक व मंचीय नाटक दोनो विधा में क्षितिज ने उपलब्धियां हासिल की हैं। अरण्यगाथा, इंस्पेक्टर मातादीन चांद पर, चार टांगें, मुर्गीवाला, हम क्यों नहीं गाते? इनके प्रसिद्ध नाटक हैं।

विगत एक दशक से प्रत्येक 15 अगस्त को क्षितिज एक नुक्कड़ नाटक का मंचन अवश्य करता है। इस स्वाधीनता दिवस पर क्षितिज रंग शिविर द्वारा श्री संतोष जैन के निर्देशन में '**हाथी मरा नहीं है**' का नुक्कड़ प्रदर्शन किया गया। श्री राजा राम चौधरी व देवेन्द्र कुमार आर्य इस नाटक का सजी व प्रदर्शन दर्शकों को बांधने मैं पूर्णतया सफल रहा। आजादी के प्रतीक इस हाथी को राज व चापलूस सभासदों द्वारा जीवित रखे जाने के निरर्थक प्रयास का स्तरीय प्रदर्शन दर्शकों को याद रहेगा।

विनायक अग्रवाल आवाल तथा आयोग चन्द्र पल्ले (राजा) गोपाल शर्मा (दरबारी नं ..1) विजय मिश्रा (दरबारी नं....4) विश्वास पाटनी (दरबारी 3) नरेन्द्र गौतम (आंध्र) खूब जमे। हाथी की मूक भूमिका में कुमुदकांत शर्मा अवीस्मरणीय रहे। □

– रमेश वर्मा 'सरश'
सम्पादक 'करार' (साप्ताहिक)
पो. बा. नं. 4 गंजपारा, दुर्ग (म. प्र.)

पंजाब नैशनल बैंक

पंजाब नैशनल बैंक के सहारनपुर क्षेत्रीय कार्यालय द्वारा क्षेत्रीय स्तर के अधिकारी वर्ग के लिये प्रथम हिन्दी कार्यशाला का आयोजन 20 एवम् 21 अगस्त 1986 को स्थानीय पंजाव होटल में किया गया। कार्यशाला का मुख्य उद्देश्य था कि क्षेत्र की शाखाओं में मुख्य रूप से हिन्दी में कार्य किया जाये और इसके लिये अधिकारी वर्ग को प्रेरित किया जाये।

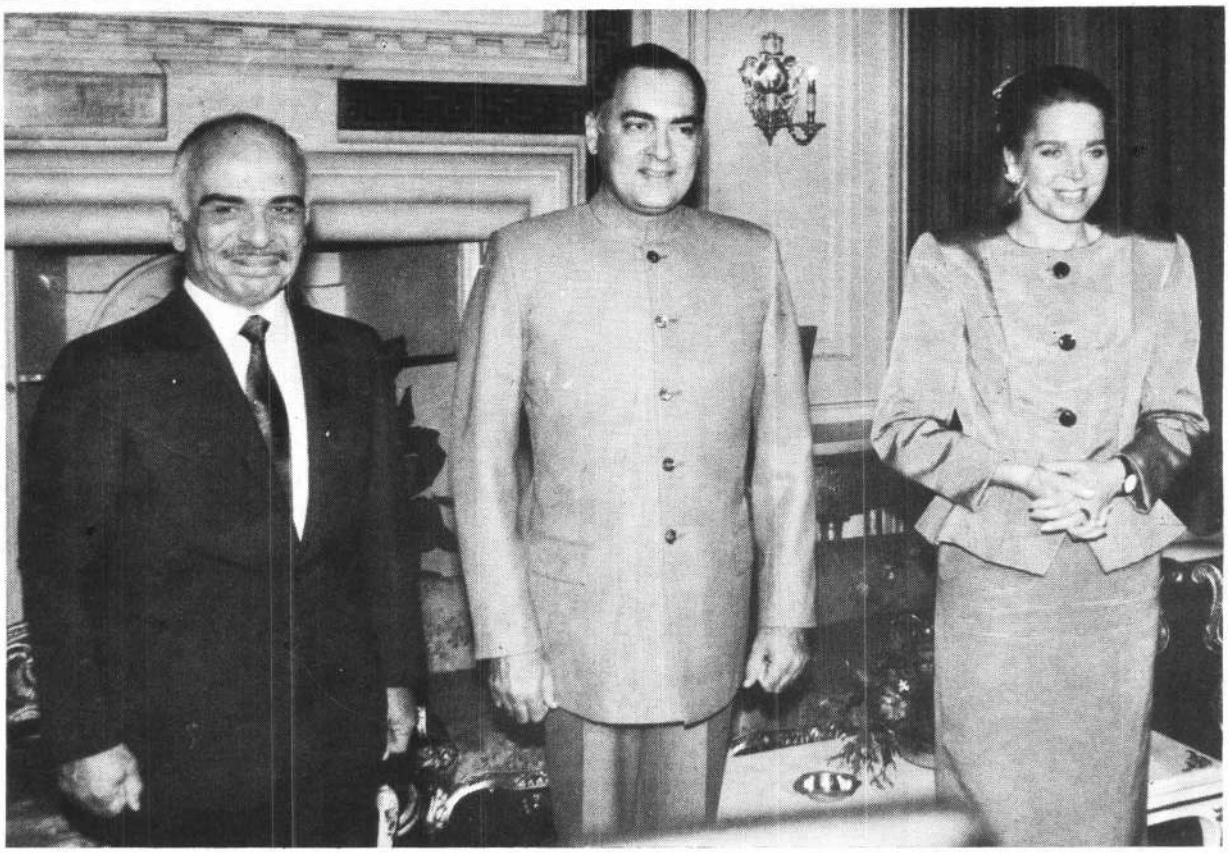
इस अवसर पर प्रसिद्ध भाषा-विद्वान डा० अम्बा प्रसाद सुमन ने अतिथि वक्ता के रूप में अधिकारी वर्ग को सम्बोधित करते हुए प्रशिक्षणार्थियों को हिन्दी में कार्य करने की प्रेरणा दी।

–वेद रतन, सहारनपुर

निदेशक : प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-1 द्वारा प्रकाशित तथा तारा आर्ट प्रेस, नई दिल्ली-2 में मुद्रित

डाक तार पंजीयन सं. डी. (डी. एन.) 105 बिना पूर्व भुगतान के सिविल लाईन डाकघर, दिल्ली में पोस्ट करने के लिए लाइसेंस यू (डी. एन.)-49 प्राप्त आर. एन. 701/57

P & T. Regd. No. D (DN)/105
Licenced U (DN)-49 to post without pre-payment at Civil Lines Post Office. Delhi. R.N. 701/57



जोर्डन के शाह हुसैन—प्रथम और रानी नूर अल—हुसैन इस माह भारत की यात्रा पर आये। गत 7 अक्तूबर को शाही दम्पति भारत के प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी के साथ।

दसवें एशियाई खेलों में भारत ने पांच स्वर्ण पदक प्राप्त किए, जिनमें चार स्वर्ण पदक अकेले कुमारी पी. टी. ऊषा ने जीते। एक स्वर्ण पदक करतार सिंह ने कुश्ती प्रतियोगिता में जीता। दोनों स्वर्ण पदक विजेता खिलाड़ी प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी के साथ।

